भूमिका

ब्रह्मचर्य एवं चरित्र निर्माणकी जो पुस्तकें अबतक हिन्दीमें प्रकाशित हुई हैं वे प्रायः सभी अधिक पृष्ठों और अधिक मूल्य की हैं। अधीर छात्र या तो ऐसी पुस्तक खरीदनेमें ही असमर्थ होते हैं अथवा उसको आद्योपान्त पढ़नेतक ऊब जाते हैं। इसी कठिनाईको देखकर यह विचार किया गया कि ब्रह्मचर्य, सदाचार तथा चरित्र निर्माणपर ऐसी पुस्तक लिखी जाये जो कि सर्वसाधारणके लिये सुलभ और सरल हो तथा जो थोड़ेमें ही इस विषयका पूरा परिचय दे सके। प्रायः इसीलिये ऐसा होता है कि चरित्र निर्माणकी आवश्यकता तथा साधनोंके प्रति वह अज्ञान रह जाता है। इसका कारण यह भी है कि चरित्र नष्ट और वीर्य क्षय करनेवाला साहित्य सुलभ होता है। ऐसी दशामें विकार और दोष रहित जीवन व्यतीत करना सम्भव नहीं रह जाता। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है लेकिन चेष्टा यही रही है कि पुस्तक छोटी रहे तथा ब्रह्मचर्य एवं सदाचारके सभी आवश्यक अङ्ग आ जायें। यदि तरुण समाजने इसे अपना कर लाभ उठाया तो निस्सन्देह मेरा परिश्रम सार्थक होगा।

—मनोहर मालवीय

विषय-सूची

विषय

जीवन सौरभ

ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता

[१]

विश्वमें आज कितना हाहाकार फैला हुआ है। यह हरा-भरा संसार, जहांपर परम पिता परमात्माने प्रकृति द्वारा सुख-वैभवके सारे सामान जुटा दिये हैं, किस प्रकार पीड़ित जन-समाजके चीत्कारसे गुञ्जित हो रहा है! जहां सुखके सभी साधन हैं जहांपर सृष्टिकर्ताने अपनी सर्वोच्च कला दिखलायी आज वह रोगी, पीड़ित, सङ्कटग्रस्त जनों—स्त्री, पुरुष, बच्चों, बूढ़ोंके हाहाकारसे भर गया है। दुःख, रोग, क्लेश, अकालमृत्यु, अविद्या, अज्ञान,

अशान्तिका घटाटोप सारे संसारपर छाया हुआ है और भीषण वर्षा हो रही है। आज मनुष्यकी, जो कि ईश्वरकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, यह दुर्दशा है। सृष्टिमें जिसे सर्वोत्तम सुन्दर शरीर, क्रियाशील दिमाग और तमाम सुखोंके साधन मिले हैं, वही मनुष्य आज निर्वल और पीड़ित होकर रुदन करता फिरता है। कहां गया वह पुरुषार्थ, कहां गये हमारे प्राचीन पुरुषार्थी, कहां गये हमारे वलशाली नवयुवक? कहां गयी है वह भारतीय मर्यादा? भारतीय संस्कृति आज किधर है? आज हमारे सव प्रकारसे हीन होनेका कारण क्या है? हम दिन-व-दिन पतनकी ओर ही क्यों चले जा रहे हैं?

विषय-लोलुपताकी पराकाष्ठा

आज धर्मप्राण, आदर्श भारतकी सभी प्रकारसे दुर्दशा है और जव तक हममें शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक वल नहीं आता इसकी इस अधोगतिको दूर कर फिर एक वार आकाशमें उसे प्रकाशमान नहीं किया जा सकता। यदि इस दुर्दशाकी खोज की जाये तो तुरन्त मालूम हो जायेगा कि मनुष्य पुरुषार्थहीन होता जा रहा है और कृत्रिम एवं क्षणिक सुखोंके लिये कृत्रिम साधनोंका गुलाम होता जा रहा है। विषय-वासनामें लिप्त होकर अपना,

अपने देशका एवं विश्वका कल्याण करनेके उद्देश्यको हम भूल बैठे हैं। जिन इन्द्रियोंके रहनेके कारण ही मनुष्य सर्वोत्कृष्ट जीव माना गया है उन्हीं द्वारा आज हम पशुवृत्तिको अपना रहे हैं और जानवरोंकी भांति अपना जीवन बना अपने आप पैरमें कुल्हाड़ी मार रहे हैं। मानव जातिका यह पतन !

ओ ! सर्वोत्कृष्ट जीव तू जाग ! विश्वका कल्याण तेरे इशारेपर अवलम्बित है ! तू पुरुषार्थी बन !

जहांपर विद्वान, बलवान, तपस्वी, मनस्वी, ब्रह्मचारी, पुरुषार्थी निवास करते थे आज वहीं कान्तिहीन, पुरुषार्थहीन और उद्देश्यरहित युवक दिखलायी पड़ते हैं। जहां राम-कृष्णने जन्म लिया, जहां बुद्ध, शङ्कराचार्य, महावीर, जैसे महात्मा हुए, जहां भगवान शङ्कर, सनत, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, शुक्राचार्य, परशुराम, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, ऋषभदेव, भारद्वाज, वीर हनुमान तथा भीष्म पितामह जैसे पराक्रमी ब्रह्मचारी हो गये और जहांके राजाओंने विभिन्न देशोंपर पराक्रम दिखलाया, आज वही देश निर्बीज-सा क्यों है ? भाइयो ! देशवासियो ! चेतो ! सोचो ! हमारा जीवन दवाइयों और लाल-पीली बोतलोंपर क्यों टिका हुआ है ?

उसका कारण यह है कि हम आज ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर रहे हैं। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते ही हम भूल जाते हैं कि गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन, सुखकर जीवन, मनुष्य जीवनके कर्तव्योंकी पूर्ति तथा योग्य सन्तानकी उत्पत्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब हम वीर्यकी रक्षा करें। यदि स्त्री और पुरुष अपने रज और वीर्यकी रक्षा नहीं करते तो निश्चय ही भयङ्कर विनाश अट्टहास करता हुआ हमें निगल जानेको खड़ा हुआ है। सम्भल जाओ! इस विपाक्त नींदसे जागो! होशमें आओ! हम क्या कर रहे हैं, कहां जा रहे हैं!

विषयका विष

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णः सर्प विषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुपाप्यहम्॥

विषयका विष काले सांपसे भी भयानक है। हमारी इस दुर्दशाका कारण यही विषय-वासना ही है। यदि आज हम इन्द्रियोंको अपने वशमें कर रखते तो निश्चित था कि यह दुर्दशा कदापि न होती। बेकारी, आत्महत्या, रोग, क्लेश आदि सभीका कारण हमारी वीर्यहीनता ही है। भारतमें जहां सदाचारकी विश्वविजयी पताका लहराती थी और जो जन शेष मानव-समाजको इसकी शिक्षा दिया करते थे आज वे पददलित हो रहे हैं।

'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात्।' यानी वीर्यरक्षा ही जीवन और वीर्यका नाश होना ही मृत्युका ग्रास होना है। वीर्यहीन होना मृत्यु है तो फिर उस अवस्थामें उसे किसी भी कार्यमें सफलता कैसी? और यदि जन्म लेकर मरना ही है तो फिर मनुष्य तनकी आवश्यकता ही क्या? क्या इस प्रकार सुन्दर और सुडौल शरीर, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका समावेश मानव जातिको इस लिये प्राप्त है कि वह अन्य कीट-पतंगोंकी भांति नष्ट हो जाये। मनुष्य जीवनकी सफलता इन्हीं धार्मिक एवं आर्थिक कर्तव्योंमें है। लेकिन 'मरणं विन्दुपातेन' वीर्यहीनता ही मृत्यु है। वीर्यरक्षा न की गयी तो फिर इन कर्तव्योंकी पूर्ति कौन करेगा! अक्सर कुछ लोग कहा करते हैं कि शरीर तो नश्वर है, उसमें समय नष्ट कौन करे। यह तो अन्तर्यामीको धोखा देना है क्योंकि यदि शरीर-रक्षाके बगैर ही ब्रह्मकी प्राप्ति एवं जीवनकी सफलता सुलभ होती तो मनुष्य तन क्यों मिलता? यह तो भ्रम है, अज्ञानान्धकार है। इसी प्रकारके अज्ञानान्धकारमें हम सर्वस्व खो बैठे—मानव-जीवनके उद्देश्यको भूल बैठे। यदि आज

मानव जीवन और धर्म

भारतवर्ष और भारतीय समस्त विश्वको ज्ञान देते, उनपर आच्छादित तमको प्रकाश द्वारा छिन्न-भिन्न कर सकते तो विश्वकी इतनी दुर्दशा क्यों होती ? किन्तु भारतीय स्वयं इस महामन्त्रको, इस मृत्युञ्जय क्रिया एवं मनुष्य जीवनके उद्देश्योंको भुलाये वैठे हैं। आज हम जिस तेजी-से पतनके गहरे गर्त्तकी ओर अग्रसर हो रहे हैं, उससे क्या कभी हम अपना या मानव जातिका कल्याण कर सकते हैं।

यजुर्वेदका उद्धरण है :—

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म सा आपः स प्रजापतिः।

सारांश यह कि वीर्य, ब्रह्म, जीव तथा सृष्टिकर्तामें कोई अन्तर ही नहीं। 'जीवनं वीर्य धारणात्'। यानी वीर्यरक्षा ही जीवन है। वीर्य ही शक्ति है। वीर्य ही ब्रह्म है। फिर हमारा शरीर वीर्य धारण क्यों करे और शक्ति उसीपर आधारित क्यों है ? क्योंकि शरीरमें परमात्माका वास है। प्रकृति ब्रह्ममय है। आप वीर्यक्षीण होकर उस ब्रह्मको धोखा देते हैं और शरीरको नष्ट कर प्रकृतिकी अवहेलना करते हैं। परिणाम ? हमारा पतन। हमारे प्राचीन ग्रन्थों द्वारा बतलाये नियमोंकी अज्ञानता और

वीर्य, जीव और ब्रह्म

ज्ञान रहते हुए भी उसकी अवज्ञा। परिणाम प्रत्यक्ष है। इसलिये कहा गया है कि—'न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमा।' अर्थात् सर्वोत्तम तप ब्रह्मचर्य है। आप आजके या पिछली शताब्दियोंके किसी महापुरुषका जीवन ले लीजिये। यह निश्चित है कि ब्रह्मचर्यका धारण करना ही उसके महापुरुष होनेका कारण है। तारीफ तो यह है कि जब एक साधारण व्यक्तिको ज्ञान आता है तो सर्वप्रथम उसका ध्यान वीर्य रक्षाकी ओर जाता है।

गृहास्थाश्रम सभी आश्रमोंका आश्रयदाता है। मनुष्य जीवनके उच्चतम आदर्श यहीं कार्यान्वित् होते हैं। २५ वर्षतक ब्रह्मचर्य धारण कर लेनेपर गृहस्थाश्रममें मनुष्यके प्रवेश करनेकी व्यवस्था की गयी है। अतः सच्चे गृहस्थ बननेके लिये सच्चा ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। शारीरिक और मानसिक शक्ति होनेपर ही गृहस्थीके कार्य किये जा सकते हैं और उत्तम वीर्य होनेपर ही योग्य और उत्तम सन्तान हो सकती है। बल, बुद्धि, ज्ञान, विद्या आदि होनेपर ही वह अपना और अपने परिवारका कल्याण कर सकता है।

बहुधा लोगोंकी यह भ्रमात्मक धारणा होती है कि ब्रह्मचारी वही हो सकता है जो सांसारिक जीवनका त्याग

कर दे। इसी सिलसिलेमें बहुधा यह प्रश्न उठता है कि फिर सृष्टिकी रक्षा कौन करेगा।

सृष्टि रक्षाका प्रश्न

लेकिन वीर्यरक्षा द्वारा ही सन्तान पैदा हो सकती है। रोग और अकाल मृत्युके शिकार होने-वाली सन्तान माता-पिता दोनोंको छोड़ जाती है और वे बराबर सन्तानकी कामना लिये बैठे रहते हैं। वे ही यदि गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन करें तो—'कोति भारः समर्थानां' सामर्थ्यवानके लिये कौन-सा काम मुश्किल है। यदि हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लें तो योग्य सन्तान पैदा करने और उन्हें आदर्श पुरुष बनानेमें बाधा क्या है।

सदाचारी भारतकी यह दुर्दशा। शोक! हा शोक!! देशमें वीर्यपातका प्रबल तूफान बह रहा है। लोग उसके तीव्र झकोरोंमें उड़ते जा रहे हैं। यह अमूल्य प्राण, यह अनुपम शरीर और इन्द्रियोंका दुरुपयोग हो रहा है। आओ? आज हम मिलकर फिर सदाचारी बनें। गृहस्था-श्रममें रहकर ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करें। एक बार फिर वही वीर, ऐश्वर्यवान् और विश्वगुरु भारतका यश कोने-कोनेमें छा जाये।

दीर्घायुका प्रशस्त मार्ग

[२]

विभिन्न देशोंके विभिन्न पत्रोंमें कभी-कभी कुछ विचित्र बातें प्रकाशित की जाती हैं ताकि पाठकोंका मनोरञ्जन हो और ज्ञान बढ़ता जाये। उन विचित्रताओंमें

१०० वर्षकी आयु

कभी-कभी यह प्रसंग भी आता है कि अमुक देशके अमुक व्यक्तिका ९९॥ वर्षमें देहान्त होगया। ९९ वर्षकी आयुमें मरना संसारमें एक विचित्र घटना है। भारतमें लोग यह कहते हुए पाये जाते हैं कि आजकल तो ५०-६० वर्षके बाद जीवित रहना दुःख ही भोगना है। इस कथनमें कितना दर्द छिपा है। ५० वर्षकी आयुमें ही मृत्युकी आशंका करनेवाले क्या कभी इस बात पर भी विचार करते हैं कि हमारे सांसारिक जीवनके कर्तव्योंका जो विभाजन किया गया है उसमें यह आशा की गई है कि प्रत्येक मनुष्य कमसे कम १०० वर्ष जिये।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासकी अवधि २५-२५ वर्षकी रखी गई है, लेकिन अवधि सदैव कमसे कम समयकी रखी जाती है। इससे यह स्पष्ट है जिन पूर्वजोंने हमारे लिये इन नियमोंको बनाया था उन्हें यह ज्ञान था कि मनुष्यकी कमसे कम आयु १०० वर्षकी होगी। और आज २५ वर्षमें मनुष्य विभिन्न रोगोंका शिकार होकर अपना आगेका जीवन बिल्कुल दुःखद बना देता है; जब कि प्राचीन समयमें इस अवधि तक उसकी बाल्यावस्था मानी जाती थी और युवक वही होता था जिसने अपने २५ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रममें व्यतीत कर उन सब गुणोंको प्राप्त कर लिया हो जो कि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये आवश्यक है जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

प्राचीन व्यवस्था

इस प्रकार गृहस्थाश्रममें मनुष्य २५ वर्षतक अपना जीवन व्यतीत करता था और इसी प्रकार फिर २५ वर्ष वानप्रस्थाश्रममें और फिर संन्यास। हिन्दू ग्रन्थोंमें ऐसे प्रसङ्ग आये हैं कि संन्यास लेनेके बाद अमुक व्यक्ति सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहकर मानव जातिके कल्याणार्थ उपदेश देता रहा। उस समय १०० वर्ष तक जीवित रहना प्रत्येक मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार था और इससे अधिक

समय तक जीवित रहना तो उसके हाथमें था। वे अपने धर्म-कर्म अथवा अपनी इच्छा द्वारा सैकड़ों वर्ष जीवित रह सकते थे। संन्यासाश्रममें स्वेच्छासे मरने तथा समाधिस्थ होनेकी कथाएँ पायी जाती हैं जिससे यह प्रकट होता है कि लोग अपना कर्तव्य पूर्णरूपेण निभा कर ही मृत्युको प्राप्त होते थे।

फिर ऐसे महापुरुषोंके वंशज हम ५० वर्षकी आयुको भी अधिक मानें यह क्या हमारी शोचनीय अवस्थाका ज्वलन्त उदाहरण नहीं है? भारत और भारतीयोंको इस

हमारी शोचनीय अवस्था

बातका गर्व है कि बड़े-बड़े गौरवशाली देश, जो कि प्राचीन समयमें वैभवपूर्ण थे, आज मिट गये और उनका नामोनिशान भी नहीं है। उनका गौरव इतिहासकी पुस्तकोंमें ही पाया जाता है। लेकिन भारत—रामकृष्णका भारत—प्राचीन ऋषियोंका भारत आज भी अपनी प्राचीन संस्कृतिको अपने जर्जर शरीरमें लपेटे सर ऊँचा किये, समस्त संसारको बतला रहा है कि हम अमर हैं—हमारे धर्म और संस्कृति पर किसीका सिक्का नहीं जम सकता। पाश्चात्य सभ्यता और उन्नतिके साधनके ठुकरानेकी आवाज सर्वप्रथम आज भारतसे ही आरही है और वर्त-

मान अशान्ति इस बातका प्रमाण है कि आधुनिक सभ्यता मानव-समाजके लिये हितकर नहीं वरन् उसका संहार करनेके लिये है।

इस पतन, इस दुःखद जीवन और अल्पायुका कारण यही है कि हम भारतमें रहकर भारतके जल-वायु और संस्कृतिके प्रतिकूल जा रहे हैं। हम प्रकृति विरोधी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। फिर प्रकृति क्या हमें क्षमा करेगी और क्या हम दण्डके भागी नहीं होंगे? प्रकृतिकी रचना मानव जातिके कल्याणके लिये है और इसीलिये वह कभी अपना नियम भंग नहीं करती और जो उसे भंग करनेकी चेष्टा करता है उसे वह दण्ड अवश्य देती है। यदि हम शान्ति और ध्यानपूर्वक विचार करें तो हम देखेंगे कि हमारी दुरवस्था और पतनका कारण प्रकृतिजन्य नियमों-की अवहेलना है और हम उसीके दण्ड स्वरूप इस अव-स्थाको प्राप्त हो रहे हैं।

आचारहीन जीवन

हमारा आचारहीन जीवन कैसा दुःखद है यह बढ़ते हुए रोगों और अकालमृत्युसे मालूम हो जाता है। हमारे आहार-विहार तथा रहन-सहनमें आज कोई आचार नहीं—कोई नियम नहीं। जीवनका उद्देश्य ही जब लोगोंको मालूम नहीं तो फिर

नियमित जीवनकी कौन कहे। जहाँ ऐसे लोगोंका बहुमत है जो खूब खाने और आनन्द उड़ानेमें ही अपने जीवनकी सफलता समझते हैं वहां सुख कैसे मिलेगा। ऐशोआराम-को मानव जीवनका उद्देश्य समझना तो उन घोड़ोंका जीवन है जो केवल इसीलिये खूब खिलाये-पिलाये जाते हैं कि उनके द्वारा प्रदर्शन हो। मनुष्य जीवन भी यदि अच्छा खाना, अच्छा पहनना तथा शरीरको अप्राकृतिक कर्मों द्वारा क्षीण करना हो तो फिर दीर्घायु और स्वस्थ जीवन कैसे मिलेगा।

आज हम अपने जीवनका प्रत्येक कार्य प्रकृति विरुद्ध कर रहे हैं। कोई भी कार्य ऐसा न रहा जिससे मानव धर्मकी रक्षा होती हो। दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये सर्वप्रथम

अल्पायुका प्रकोप

आवश्यकता यह है कि हम अपना जीवन आचारयुक्त और नियमित बनायें और प्रकृतिके बनाये नियमोंके अनुसार अपना प्रत्येक कार्य बनायें। भोजनमें सात्विकता नहीं, स्त्री सहवासमें प्रकृति धर्मका पालन नहीं, वचनमें सत्यता और दृढ़ता नहीं, समयका अपव्यय, कारबारमें सत्य और ईमानदारी नहीं, विचारोंमें अश्लीलता, स्त्री जातिका अनादर, निरुद्देश्य वीर्यपात, सन्तानको उत्तम बनानेकी चेष्टा नहीं। ये सब

असंख्य बुराइयां हममें घुस गयी हैं जिनसे हमारी आयु घटती जाती है और हम यह शिकायत करते हैं कि आजकल ५० वर्षके बाद जीना दुःखद है। यदि यही अवस्था बनी रही तो ५० वर्ष भी जीना कठिन हो जायेगा। विचार कीजिये कि किस प्रकार धीरे-धीरे देशमें अकाल मृत्यु बढ़ रही है। हमारे पूर्वज प्रकृति धर्मका पालन कर स्वेच्छासे मृत्युको प्राप्त होते थे। अभी २५ वर्ष पहले भी यदा-कदा देखनेमें आता था कि लोग १०० वर्षकी उम्रतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन अब? इस अकाल मृत्युका कारण यही है कि हम प्रकृतिके रचित नियमोंकी अवज्ञा कर अपने आप न चाहते हुए भी मृत्युको पास बुलाते हैं।

वीर्यरक्षा द्वारा मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है और उसके लिये यह आवश्यक है कि उसमें आत्मसंयम हो। आत्मसंयम तभी सफल होगा जब सभी इन्द्रियोंपर पूरा अधिकार हो तथा प्राकृतिक धर्मका पालन किया जाये। शास्त्र कहिये अथवा प्रकृति, सभी इस बातकी आवश्यकता दिखलाते हैं कि व्यर्थमें वीर्यपात महापातक है। हिन्दू शास्त्रमें तो इसको ब्रह्महत्या बतलाया गया है

आत्मसंयमकी आवश्यकता

और प्रकृति जिस रूपमें उसके लिये दण्ड देती है वह हमारे वर्तमान जीवन और अकाल मृत्युसे प्रत्यक्ष है। इतना दण्ड पाकर भी हम न चेतें तो निश्चय ही हमारे सामने सर्व-नाश विकराल रूपमें खड़ा है और वर्तमान अवस्था प्रमाणित करती है कि हम दिन-ब-दिन अल्पायुको प्राप्त होते जायेंगे। यदि १०० वर्ष जीना है और सुखपूर्वक जीना है तो प्रकृतिके नियम भङ्ग न किये जायें और सभी कार्य तदनुसार ही हों।

माता-पिता और सन्तान

बिल्ली-कुत्तेकी मौत मरना किसको प्रिय है? मनुष्य जीवनका उद्देश्य विश्वका कल्याण करनेके लिये है और यह तभी हो सकता है जब मनुष्यका व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन सुखमय हो। प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध चलकर कभी भी सुख नहीं मिल सकता और हम क्रमशः क्षीण होते जायेंगे, अपना पाप सन्तानको देते जायेंगे और साथ ही यह शिकायत करेंगे कि आजकलके नवयुवक और नवयुवतियाँ सदाचारी जीवन व्यतीत नहीं करते और धर्मके विरुद्ध आचरण रखते हैं, खान-पान और रहन-सहनमें दोष रखते हैं। यदि इसका कारण देखा जाय तो पहले माता-पिता ही दोषके भागी होंगे अतः

माता-पिताका यह सर्वोच्च कर्तव्य हो जाता है कि वे बच्चोंका पालन-पोषण नियमित और प्राकृतिक ढङ्गपर करें। इसके लिये यह जरूरी है कि वे स्वयं अपना जीवन सुधारें।

तात्पर्य यह कि यदि मनुष्य आहार, विहार तथा सभी अन्य कार्योंमें प्रकृति और स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करे तो कोई कारण नहीं कि वह १०० वर्ष तो साधारणतः जिये ही, साथ ही अपने आत्मबल तथा सद्कार्योंसे मनो-वांछित फल पाये।

बहुधा शास्त्रोंके बताये नियमोंमें युवक विश्वास नहीं रखते। किन्तु यदि आधुनिक साधनों द्वारा कृत अनु-सन्धानोंका अध्ययन करें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि दीर्घजीवी मनुष्य तभी हो सकता है जब उसका जीवन सदाचारपूर्ण हो। अनियमित आहार-विहारकी बुराई जितनी आजकल पाश्चात्य विद्वान् करते हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतके प्राचीन ग्रन्थोंमें बतलाये गये नियम मानव जातिके कल्याणके लिये हैं, अतः उनका पालन होना चाहिये।

भारतीय गार्हस्थ्य जीवन

[३]

मनुष्यके कर्तव्योंकी पूर्ति गृहस्थाश्रम द्वारा ही होती है। वास्तवमें मनुष्य-जीवनके कर्तव्योंकी पूर्ति तभी हो सकती है जब गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर उसके नियमोंका पालन करते हुए जीवन व्यतीत किया जाये। अपना, परिवारका और समाज-का कल्याण मनुष्य तभी कर सकता है जब वह अपना गार्हस्थ्य जीवन सफल बना सके और अन्य आश्रमोंकी सफलता इसीपर निर्भर करती है। गार्हस्थ्य जीवन जिसने सफलतापूर्वक व्यतीत कर लिया वही धन्य है, क्योंकि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते ही मनुष्यपर नाना प्रकारके दायित्व और कर्तव्य आते हैं और उन्हींकी पूर्ति ही अन्त-में चारों फलको देने वाली होती है।

वलकी आवश्यकता

१७

इस प्रकार, गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि मनुष्य सामर्थ्यवान हो तथा उसमें कर्तव्योंकी पूर्तिकी क्षमता हो। शरीर और मनसे जो शक्तिशाली हो वही तो इतना भार सम्भाल सकता है। यह भलीभांति याद रखना चाहिये कि गृहस्थाश्रम कमजोर व्यक्तियोंके लिये नहीं है। जिसके शरीर और मनमें इतनी शक्ति न हो कि वह मनुष्य जीवनके कर्तव्योंकी पूर्ति करे वह गार्हस्थ्य जीवनसे दूर रहे। बलहीन गृहस्थ समाजको दूषित करता है--वह अपना और अपनी सन्तानका भविष्य सत्यानाश करेगा यह पहले ही निश्चित है। तो फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश कौन करे ? वह, जिसमें शारीरिक और मानसिक शक्ति परिपूर्ण हो, जो अपना और विश्वका कल्याण करनेकी क्षमता रखता हो,जो योग्यऔर पराक्रमी सन्तान उत्पन्न कर सके, जिसके पास यश,विद्या तथा बुद्धि हो और जो अपनी स्त्रीके साथ धर्मानुसार आचरण करता हो। ऐसी अवस्थामें पहली बात यही सामने आती है कि एक व्यक्ति जबतक कम-से-कम २५ वर्षतक ब्रह्मचर्य धारण कर अपने उपर्युक्त गुणोंको एकत्रित नहीं कर लेता उसे गार्हस्थ्य जीवनमें प्रवेश करनेका कोई अधिकार नहीं। अतएव ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रमका मूल है।

निस्सन्देह अखण्ड ब्रह्मचारी और गृहस्थमें बहुत अन्तर है। लेकिन इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते हुए तथा अपने कर्तव्योंकी पूर्ति करते हुए जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है वह तेजस्वी, ओजस्वी, मनस्वी, यशस्वी, तपस्वी, लक्ष्मीवान तथा बुद्धिमान हो सकता है, और साथ ही विश्वका कल्याण करते हुए वह ऐसी सन्तान पैदा कर सकता है जो उसीकी भांति पराक्रमी हो। इस प्रकार परिणाम यह निकला कि गृहस्थाश्रममें रहकर भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है और इसके द्वारा वह अपना और मानव जातिका कल्याण कर सकता है तथा सन्तान भी उसी प्रकार योग्य उत्पन्न कर सकता है। लेकिन यह योग्यता और शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब इसके पूर्व ही ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका पालन किया गया हो, क्योंकि कर्म करनेके पूर्व शक्ति आवश्यक है और शक्तिको बनाये रखनेसे ही कर्म किया जा सकता है। अतः सफल गृहस्थके लिये यह आवश्यक है कि वह ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका पालन कर चुका हो और साथ ही अपने गार्हस्थ्य जीवनमें भी नियमोंका पालन करता रहे क्योंकि कल्याणके निमित्त ही पुरुष विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है।

गृहस्थ और ब्रह्मचर्य

एक समय था जब लोग गृहस्थाश्रममें कल्याणके निमित्त प्रवेश करते थे और मानव जीवन सफल बनाते थे और आज युवकोंकी गृहस्थाश्रममें कितनी दुर्दशा है। विवाह करके ज्योंही आगे बढ़े और उनका मार्ग कण्टका-कीर्ण हो जाता है, पग-पगपर ठोकरें मिलती हैं, मृत्यु-पर्यन्त वे दुःख झेलते रहते हैं, समाजको रसातलकी ओर ढकेलते रहते हैं और अन्तमें अपनी सन्तानको भी वही कुकर्म करने और वही कष्ट झेलनेको विवश कर जाते हैं। देशके नौनिहाल तुम्हारी यह दुर्दशा! तुम क्या मानव जातिको उन्नत और विकसित कर सकते हो जब तुम स्वयं अपना कल्याण करना तो दूर रहा, दुःख भी दूर करनेमें असमर्थ हो। इसका एकमात्र कारण यही है कि बचपनसे मनुष्य कुमार्गसे चलता है और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये जिस तप और शक्तिकी आवश्यकता है उसको वह प्राप्त नहीं कर पाता।

संयम और नियमके साथ रहना ही गार्हस्थ्य जीवन-में ब्रह्मचर्य है। बतलाया गया है कि 'सन्तानार्थैव मैथुनम्' सन्तानकी कामना करके ही स्त्री सम्भोग किया जाये अन्यथा नहीं। स्त्रीको केवल भोग्य सामग्री समझना मूर्खता है और पशु जीवनसे भी बुरा है। ऋतुकालमें

अपनी स्त्रीके साथ नियमानुसार केवल सन्तानकी कामना लेकर ही समागम करनेवाला व्यक्ति गार्हस्थ जीवनमें भी ब्रह्मचारी है।

गार्हस्थ्य जीवनमें स्त्री और पुरुष दोनोंका समान अधिकार है। स्त्री सहधर्मिणी, अर्द्धाङ्गिनी और जीवन-सहचरी है। शास्त्रानुसार दोनों एक ही शरीरके दो अङ्ग हैं। अतः सुखी गृहस्थ बननेके लिये

दाम्पत्य जीवन

दाम्पत्य जीवनपर ध्यान देना आवश्यक है, दम्पतिका दुर्व्यसनी और विषयासक्त होना नाशकारी है। वेदमें कहा गया है कि जैसे शब्दोंसे अर्थोंका साथ, वाक्यका वाचकसे तथा सूर्य और पृथ्वीका सम्बन्ध है उसी प्रकार पति और पत्नीका सम्बन्ध है। विवाह होते ही दोनों एक हो जाते हैं इसलिये एकको अपनेसे निकृष्ट या भोग्य सामग्री समझना भारी गलती है। कोई भी कार्य करना हो दोनोंका सहयोग आवश्यक है।

केवल ऋतुकालमें स्त्री समागम करना ब्रह्मचर्य के समान है। सारांश यह हुआ कि गार्हस्थ्य जीवनमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन नितान्त आवश्यक है। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि—'व्यर्थीकारेण

नियमित सहवास

शुक्रस्य ब्रह्महत्या मवाप्नुयात्।' वीर्यको

बेकार नाश करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। फिर गृहस्थ सुखी कैसे रहें? इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यमें दुर्बलता आ जाती है। विषयासक्त रहनेसे विचार-शक्ति लोप हो जाती है और फिर निरन्तर दुःख भोगना पड़ता है। विद्या, धन आदि रहनेपर भी यदि मनुष्य स्वस्थ और सुखी नहीं है तथा रोगी सन्तान उत्पन्न होती है तो उसका जीवन ही व्यर्थ रहा। संयम नहीं रहनेसे स्त्री बहुधा रोगोंका शिकार हो जाती है और उसकी सुन्दरता और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। परिणाम यह होता है कि परिवार दुःखका केन्द्र बन जाता है और मनुष्य कह बैठता है 'घर स्त्री जंजाल है।' यदि अपनेमें शक्ति न हो तो खड़े होना और बैठना भी कठिन हो जाता है, गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंकी पूर्ति तो कठिनाइयोंसे भरी रहेगी ही।

पहले कहा जा चुका है कि गृहस्थाश्रम उन लोगोंके लिये नहीं है जो दुर्बलेन्द्रिय हैं। साथ ही यह भी बतला दिया गया है कि ब्रह्मचर्याश्रमसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेका उद्देश्य यह नहीं है कि मनुष्य वीर्यपात करना आरम्भ कर दे और थोड़े ही दिनोंमें २५ वर्षोंको लगातार तपस्याको नष्ट कर दे। ब्रह्मचर्य व्रतका बराबर पालन

करनेसे ही मनुष्य जीवनके उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, केवल योग्य सन्तानकी उत्पत्तिकी कामना लेकर ही ऋतु प्राप्त होनेपर ही पति-पत्नीको सहवास करना चाहिये और फिर जबतक बच्चा ५ वर्षका न हो जाये दूसरी सन्तानकी कामना न करे। इससे मा, बाप और बच्चे तीनों स्वस्थ और सानन्द रहेंगे। जो व्यक्ति इन्द्रियोंके वशीभूत होकर कर्म करते हैं वे लक्ष्मी, स्वास्थ्य, स्त्री तथा सन्तानसे विहीन हो जाते हैं और फिर उनकी बड़ी दुर्गति होती है, ऐसा हमारे ग्रन्थोंमें बतलाया गया है।

स्त्री और ब्रह्मचर्य

[४]

वहुधा लोगोंकी यह धारणा होती है कि ब्रह्मचय सृष्टि विरोधी है। साथ ही यह भी भ्रम है कि ब्रह्मचर्य केवल पुरुषोंके लिये है और केवल पुरुष ही ब्रह्मचारी हो सकते हैं। वास्तवमें ब्रह्मचर्यका वास्तविक महत्व गृहस्थाश्रममें है। इस दृष्टिसे यह भ्रम तो दूर ही हो जाता है कि उससे सृष्टि संचालनमें वाधा हो सकती है। सृष्टि संचालनके लिये ही यह आवश्यक है कि प्रत्येक गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे और प्राकृतिक धर्म (रजस्राव, गर्भावस्था आदि) के अनुसार केवल सन्तानकी कामना करके ही स्त्रीके साथ समागम करे। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थोंमें बतलाया गया है कि ऋतुकालमें नियमानुसार पत्नीके साथ समागम करनेसे ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग नहीं होता वरन् गृहस्थका यही ब्रह्मचर्य है। अतएव यह तो स्पष्ट है कि प्रत्येक गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रतका पालन

कर सकता है। ब्रह्मचारी गृहस्थ ही उत्तम सन्तान पैदा कर सकता है। इस प्रकार जीवन नियमित हो जानेपर गृहस्थ स्वयं तो दीर्घजीवी होगा ही सन्तान उत्तम, योग्य, स्वस्थ और दीर्घजीवी बनेगी। अतः सृष्टिको बनाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि वीर्यकी रक्षा सभी प्रकारसे की जाये। प्रत्येक प्रकारकी उन्नति और विकासके लिये ब्रह्मचर्य व्रतकी आवश्यकता है। फिर सृष्टि कायम तभी रह सकती है जब सर्वत्र पुरुषार्थी व्यक्ति पाये जायें और मानव जाति उन्नत और विकसित होती रहे। लेकिन वास्तवमें हम देखते हैं कि दिन-ब-दिन मनुष्य पतनकी ओर अग्रसर हो रहा है और आहारके नियमोंकी अव-हेलना की जा रही है। कुत्सित विचार धारा ही आजकी विश्व अशान्तिका कारण है। सदाचार और ब्रह्मचर्यके नियमोंके अनुसार जीवन व्यतीत किया जाये तो इस प्रकार अमानुषिक कार्य न हों और विभिन्न प्रकारके कलह, रोग-दोष और अशान्ति न उत्पन्न हों। तात्पर्य यह कि सृष्टिको कायम रखने, मानव जातिको विकसित करने तथा जीवन सुखी बनानेके लिये यह अनिवार्य है कि वीर्य रक्षा की जाये और उसके लिये आहार-विहार नियमानुसार हो।

गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये स्त्रीका सहयोग प्राप्त न हो तो वीर्य रक्षा सम्भव नहीं, और यदि सम्भव हो भी तो वह दोषपूर्ण है तथा अहितकर हो सकता है। वास्तविकता तो यह है कि पुरुषकी अपेक्षा स्त्री अधिक धैर्य और शान्ति धारण कर सकती है और वह पुरुषको इस कार्यमें विशेष रूपसे सहायता पहुंचा सकती है।

स्त्रीका सहयोग

ब्रह्मचर्य स्त्री तथा पुरुष दोनोंके लिये समान रूपसे आवश्यक है। जिस प्रकार वीर्यक्षय होनेसे पुरुषकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति क्षीण होती है और सन्तानोत्पत्तिका विशेष भार उसीपर होनेके कारण उसके द्वारा ब्रह्मचर्य व्रतका पालन होना अत्यावश्यक है। ब्रह्मचर्य व्रतके पालनका ध्यान दोनोंमेंसे किसी एकको ही होना अहितकर है तथा उससे ब्रह्मचर्यके सभी फल प्राप्त नहीं होंगे। विशेषतः उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति तथा उनके उचित पालन-पोषणके लिये यह आवश्यक है कि स्त्रीको इसका उतना ही ज्ञान और ध्यान हो जितना पुरुषको। ऐसी अवस्थामें उस दम्पतिका पारिवारिक जीवन स्वर्ग बन जायेगा और किसी भी कार्यमें दोनों सफल होंगे। फिर सन्तानका पालन-पोषण भी उन्हीं उत्तम माता-पिता

द्वारा होनेसे मानव जातिका भविष्य आशापूर्ण हो जाता है।

स्त्री जातिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना किसी अंश तक स्वाभाविक है, क्योंकि वह अपने सतीत्वके लिये विख्यात है तथा लज्जा उसका आभूषण है। अबला भी अपने सतीत्वपर आघात होते देख सांपकी भांति फुफकार उठती है और जिस प्रकार कहीं-कहीं स्त्रियोंने अपने सतीत्वकी रक्षा की है वह सर्वविदित है। यदि पति चाहे तो पत्नीको ब्रह्मचर्यका महत्व बतलाकर सफलताके साथ मनुष्य जीवन व्यतीत कर सकता है।

लज्जा और सतीत्व

यदि पुरुष अखण्ड ब्रह्मचारी हो सकता है तो स्त्रियोंके लिये भी यह सम्भव है। जो फल ब्रह्मचर्य धारण कर पुरुष पा सकता है वह स्त्रीके लिये भी सुलभ है। गृहकार्यके सञ्चालनका भार प्रधानतया स्त्रीपर रहता है और यदि उसमें ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त गुण हों तो निश्चय ही परिवारका कल्याण होगा। प्राचीन भारतमें ऐसी स्त्रियोंके होनेकी कथाएं पायी जाती हैं और साधारण स्त्रियोंकी अपेक्षा उनमें विशेषता अवश्य ही स्वीकार की गयी है।

इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्य व्रतके पालनकी विशेष आवश्यकता है और उस आवश्यकताकी पूर्ति तभी हो सकती है जब पुरुष और स्त्री दोनोंका सहयोग हो।

कन्याके समानाधिकार

ऐसा परिवार अनुकरणीय होगा और सर्वत्र कल्याणकारी होगा। जिस प्रकार पुरुषके लिये गृहस्थ बननेके पूर्व ब्रह्मचर्याश्रमका विधान है उसी प्रकार स्त्रीके लिये कहा गया है—'ब्रह्मचर्येण कन्यां युवानं विन्दते पतिम्' ब्रह्मचर्य धारण करनेके बाद युवा पतिसे कन्याका विवाह किया जाये। इस प्रकार स्त्रीके लिये ब्रह्मचर्यकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी पुरुषके लिये। इसके प्रमाणस्वरूप शास्त्रोंमें व्यवस्था तो है ही, आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता इसकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं। व्यवहारिकता सभी प्रकारके नियमों और विधानोंकी कसौटी है, और व्यवहारिकता ही इस सिद्धान्तका अकाट्य प्रमाण है। सच्चा कल्याण, वह चाहे आधिभौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, तभी प्राप्य है जब नियमपूर्वक गृह धर्मका पालन किया जाये। यह तभी हो सकता है जब प्रत्येक गृहमें दम्पति ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करें।

आत्म संयम और इन्द्रियां

मनुष्यको ५ ज्ञानेन्द्रियां और ५ कर्मेन्द्रियां प्राप्त हैं जिनके द्वारा वह मनुष्य जीवन व्यतीत करता है। इन दो प्रकारकी १० इन्द्रियोंमें जिह्वाकी अपनी विशेषता है। वह ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है।

स्वादेन्द्रिय

वाणीकी शक्ति भी इसीमें है और स्वादेन्द्रिय भी यही है। आत्म संयम और वीर्यकी रक्षाके लिये जिह्वाके स्वादेन्द्रिय और वाणी दोनों कार्य विशेष रूपसे विचारणीय हैं। स्वादेन्द्रियका कार्य उसमें भी विशेषता लिये है। इसीलिये आत्म संयमके लिये सबसे पहले स्वादेन्द्रियपर नियन्त्रण पाना अनिवार्य है। यदि स्वादेन्द्रियपर नियन्त्रण न रहा तो फिर आत्म संयमका ढोंग व्यर्थ है। जो स्वादेन्द्रियकी लगाम ढीली कर अन्य इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करना चाहेगा वह कभी सफल न होगा। यदि स्वादेन्द्रिय वशमें आ जाये तो ब्रह्मचर्य धारण करना बिल्कुल सरल हो जाता है।

जीवन धारण करने और पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करनेके लिये वीर्यकी रक्षा करनी अनिवार्य है। और इस व्रतका पालन करनेके लिये मनुष्यको सर्वप्रथम अल्पाहारी होनेकी आवश्यकता है। ठूंस-ठूंसकर पेट भरनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता। आरोग्यता और वीर्यकी पुष्टिके लिये अल्पाहारी होना चाहिये। अधिक भोजन करनेवाले-का वीर्य बराबर पतला होता जायेगा और वह अंतड़ियोंके रोग, स्वप्नदोष आदिका शिकार होता जायेगा। नियमित, सात्विक और अल्पाहार हो मनुष्यको लाभकर है। इस बातके अकाट्य प्रमाण हैं कि अधिक खानेवाला व्यक्ति कभी भी दीर्घायु नहीं पा सकता और अकाल मृत्यु विक-राल मुंह खोले सदैव खड़ी रहेगी। बहुधा तो अधिक खानेसे ही हैजा जैसी बीमारी हो जाती है और इस भय-ङ्कर रोगसे कितने छुटकारा पाते हैं, यह मालूम ही है। आहार जीवन धारण करनेके लिये है न कि जीवन आहार-के लिये है। मनुष्य जीवन पाकर विभिन्न कर्तव्यों और दायित्वको पूरा करना पड़ता है। भोजन जीवनको बनाये रखनेके लिये है।

अपने यहां कहावत है कि कम खाना और गम खाना हर हालतमें अच्छा है। मनुष्य और पशुमें अन्तर क्रिया-

शील मस्तिष्कसे प्रकट होता है, खान-पानका भेद तो कोई भेद नहीं है। यदि पशुको भी अधिक चारा-घास दिया जाये तो वह नहीं खायेगा। लेकिन मनुष्य समझता है कि संसारमें इतना खाद्य पदार्थ है तो फिर खायेगा कौन। वह यह बात भूल जाता है कि अति भोजन हानिकर तो है ही साथ ही इससे मनुष्य जीवनका उद्देश्य भी भ्रष्ट हो जाता है। उत्तमसे उत्तम कार्य मनुष्य द्वारा सम्पादित हो सकता है, किन्तु यदि आहार-विहार ही जीवनका ध्येय हो जाये तो जीवनके शेष महत्वपूर्ण कार्य यों ही पड़े रह जाते हैं और मनुष्य जीवन पशुओंसे भी गया-गुजरा हो जाता है। पशु अपने प्रकृतिजन्य गुणोंके अनुसार कार्य करते हैं और हम प्रकृतिके दिये हुए पदार्थोंका भोग अप्राकृतिक रूपसे करते हैं। यही कारण है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिमें इतना परिवर्तन हो गया है, और सर्वत्र खाद्य पदार्थोंके लिये भीषण अशान्ति फैल रही है। अर्थप्रधान युगमें अर्थाभाव ही एक विकट समस्या है। अति भोजन करनेसे खाद्य पदार्थका अभाव हो जायेगा ऐसी कोई बात नहीं है लेकिन अति भोजन मनुष्यको भीषण शारीरिक और मानसिक हानि पहुंचाता है।

मिताहारकी आवश्यकता

यदि स्वादेन्द्रियपर वश न रहा तो पेट कभी ठीक नहीं रहेगा और उससे सभी प्रकारके विकार उत्पन्न होंगे। अनेक प्रकारके रोग-दोपका कारण पेटकी गड़बड़ी है।

पाश्चात्य देशोंका रुख

यदि उसे ठीक रखा जाये, उससे उसकी शक्तिके अनुसार काम लिया और कभी-कभी आराम भी दिया जाये तो पहले तो कोई रोग होगा नहीं और यदि हो भी जाये तो कभी संक्रामक नहीं होने पायेगा। पाश्चात्य देशोंमें अति भोजन करनेका बड़ा रिवाज था, और अभी भी है, लेकिन विद्वान विशेषज्ञोंने जब अनुसन्धान किया तो मालूम हुआ कि नाना प्रकारके रोग, मस्तिष्कका विकृत होना आदिका कारण अति, अनियमत और असात्विक भोजन है। फलतः इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया जा रहा है और आज वहां असंख्य व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। फल और दूधके आहारका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें विशेष रूपसे हो रहा है और राजसिक और तामसिक भोजनकी तीव्र निन्दा की जा रही है। एक बात विशेष रूपसे विचारणीय है कि फल और शाकाहारका प्रयोग उधरके विद्वान मनीषी और महान् पुरुष ही अधिकांशमें करते देखे गये हैं, और तामसिक वातावरणमें पल-

कर भी अनेक महान् पुरुषोंने तामसिक और राजसिक वृत्तिको त्यागकर सात्विक जीवनको अपनाया और वे ही उसके प्रचारके कारण और प्रमाण बन रहे हैं। इसी प्रकार उपवासका महत्व भी वे स्वीकार करते हैं। हमारे यहां व्रतोपवासका जो महत्व बतलाया गया है और जो नियम बने हैं उनपर हम नाक-भौं सिकोड़ते हैं। लेकिन पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मति लेनेपर हम देखते हैं कि आरोग्यता और वीर्य-रक्षाके लिये सात्विक भोजनको ही उन्होंने महत्व दिया है। इस प्रकारकी व्यवस्था हमारे यहां हजारों वर्ष पहलेसे है। जो आरोग्य रहना चाहते हैं उन्हें ऐसा भोजन करना चाहिये जो पचने योग्य हो, और जिनका परिणाम भी लाभकर हो। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि वस्तुएं खाद्य हों, भोजन करने योग्य हों। भगवान कृष्णने गीतामें बतलाया है कि सात्विक जीवन या दूसरे शब्दोंमें मनुष्य जीवन व्यतीत करनेके लिये यह आवश्यक है कि राजसिक और तामसिक भोजनका त्याग किया जाये और ऐसा आहार हो जिससे आयु, जीवनकी पवित्रता, बल, आरोग्यता, तथा सुख प्राप्त हो और जो प्रेमको बढ़ानेवाला, सरस, पुष्टिकारक एवं रुचिकारक हो। यदि भोजनसे शरीर और मनको लाभ नहीं पहुंचता

और वह केवल स्वादेन्द्रियको तृप्त करने और पेट भरनेके लिये किया जाता है तो निश्चय ही उससे हानि होगी और रोग-दोषकी वृद्धि होती जायेगी। अति और असात्विक भोजन करनेको हमारे शास्त्रोंने पाप बतलाया है। पाप इसीलिये है कि इससे मनुष्य अपना अहित तो करता ही है वह दूसरेके लिये भी घातक रहता है और यह महापातक है।

शाकाहार

प्रकृति ऐसे अन्न, फल, शाक, दूध आदि वस्तुएं हमें प्रदान करती है जो हमारी मानसिक और शारीरिक उन्नतिमें सहायक हैं और हम उनके गुणोंकी हत्या कर इस प्रकार सेवन करते हैं कि धन भी व्यय होता है और बदलेमें विकार मिलता है। दूसरे शब्दोंमें हम बीमारी मोल लेते हैं। मैदा, आचार-मुरब्बा, बहुत उबाली हुई तरकारियां, मिठाइयां, रबड़ी आदिसे हमें लाभ नहीं। केवल स्वादेन्द्रियको तृप्त करनेके लिये हम उनका सेवन करते हैं। प्रकृतिने हमारे हितार्थ उनमें जो गुण दिये थे उन्हें तो हमने उनका रूप बदलकर नष्ट कर दिया और तब उसका इस प्रकार सेवन किया जाता है कि सिवाय हानिके और कोई परिणाम नहीं निकलता। ऐसी अवस्थामें हमारा यह कर्तव्य है कि हम

खाद्य पदार्थका सेवन इस दृष्टिसे करें कि उनके गुण और स्वभाव उनमें प्राकृतिक रूपमें रहें जिससे हमारा लाभ हो।

भोजनका असर मनपर बहुत पड़ता है। कहावत भी है जैसा अन्न वैसा मन। यही कारण है कि राजसिक और तामसिक भोजन करनेवाले क्रूर, क्रोधी, कामी और विवेकशून्य होते हैं। दूध, फल, तथा पूर्णान्न खानेसे मनुष्यकी सात्विक वृत्ति जागती है और वह अपना और विश्वका कल्याण कर सकता है। इसके विपरीत भोजनका विपरीत परिणाम होता है। नियंत्रित जीवन ही जीवन है। अनियंत्रित जीवनसे उच्छृङ्खलता और नीच वृत्ति मिलती है और किसी भी अवस्थामें ऐसा मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। वह समाजका सदैव अहित ही करता जायेगा।

अन्न और मन

भोजन करते समय प्रत्येक ग्रासको भली भांति चबा लेना चाहियें ताकि वह रालमें मिल जाये। इससे पाचन क्रियामें बड़ी सहायता मिलेगी और भोजनके साथ पानी पीनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। भोजनके साथ अधिक या बादमें पानी पीना हानिकारक है।

आत्मसंयमका मुख्य साधन यही है कि स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण हो। यदि यह कार्य सफल हुआ तो मनुष्य

आरोग्य रहेगा और मानसिक उन्नति उत्तरोत्तर होती जायेगी। स्वादेन्द्रिय अपने वशके बाहर गयी और फिर सुखकी आशा करना ही व्यर्थ है। प्राण रक्षा ही आहारका उद्देश्य है। इस उद्देश्यको भ्रष्ट करना दुःखोंकी जड़ है। अतएव स्वादेन्द्रियको वशमें रखकर केवल जीवित रहनेके लिये अल्प, सात्विक और नियमित भोजन किया जाये।

मनपर नियन्त्रण

एक व्यक्ति जब आसानीसे उत्तेजित हो जाता है तो वह अपनी पाशविक इच्छाओंको पूरा करनेके लिये नयी-नयी तरकीब ढूंढ़ता फिरता है और पतनकी ओर गिरता चला जाता है। समाजका वायु मण्डल दूषित हो जाता है। लेकिन अगर ध्यान पूर्वक देखा जाये तो मालूम होगा कि इस भ्रष्टाचार और घृणित मनोवृत्तिका केन्द्र हमारा मन है। दोष चीजोंमें नहीं वल्कि हमारी आंखोंमें हैं। हमारी भ्रष्टताका कारण हमारी भावनाएं हैं। इस प्रकार विचार करनेसे हमें तुरन्त मालूम होगा कि युवकोंमें जिस प्रकार व्यभिचार और कमजोरीने अपना घर कर लिया है तथा व्यक्ति, परिवार और समाज जिस प्रकार दुर्दशाग्रस्त है उसका कारण नैतिक संयमका अभाव है। वास्तवमें दोष

साधनोंका नहीं, वायु-मण्डलका नहीं बल्कि मनोवृत्ति-का है। आदमी अपने विचारोंमें आनन्दसे गन्दगी पैदा होने देता है और बड़ी तेजीसे वह उसी कुत्सित जीवनकी ओर बहता जाता है।

किसी गन्दे गाने, कविता अथवा कहानीको पढ़कर, किसी उत्तेजक चित्र या अवसरको देखकर यदि हम अपनी इन्द्रियोंकी लगाम ढीली कर देते हैं तो मनुष्यत्व कहां रहा। वह मनुष्य कैसा जब उत्तेजक चीजें देख सुनकर उसमें उत्तेजना आ जाये। किसी बदबूदार चीजसे जब बदबू आती है तो लोग नाक दबा लेते हैं, उसे उठाकर सूंघने नहीं लगते। इसी प्रकार यदि किसी गन्दी चीजसे साक्षात हो जाये तो अपनी आंख और कान बन्द कर लेना चाहिये और तुरन्त काबूमें कर लेना चाहिये कि उसमें गन्दगी न भर जाये। मनुष्यका ज्ञान और दिमाग इसलिये है कि वह उनसे काम ले, न कि उनमें गन्दगी पैदा होने दे।

अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्य इसलिये श्रेष्ठ है कि उसमें ज्ञान है। अपनी बुद्धि द्वारा वह भला बुरा सोच सकता है। अतः जीवनकी सफलता उसके विचारों और भावोंमें है। ज्ञानका तात्पर्य यह है कि उसमें उच्च भाव

हों और जहां उच्च भाव होगा वहां उत्तेजना बढ़ानेवाली चीजोंको स्थान ही नहीं है। किसी अश्लील साहित्य पढ़ने या किसी गन्दे या उत्तेजक अवसरसे यदि विचार भी उसी तरह हो जाते हैं तो यह कमजोरी है। क्या हम इतने कमजोर हो जायें कि कोई भी आकर हमें ठोकर मारकर नीचे नालियोंमें ढकेल दे। और ढकेलनेवाली चीज ऐसी हो जिसमें न जान है और न कोई शक्ति। उत्तेजना-को हम अपनी इच्छासे स्थान देते: हैं, वही धीरे-धीरे हमारे मनमें अपना घर बना लेती है और फिर उसका अधिकार सभी जगह हो जाता है। यदि आपको सहन नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति आपपर अत्याचार करे या मनमाना काम कराये तो फिर आप ऐसी चीजोंसे मनको क्यों अपवित्र होने दें। लोग गन्दे-भद्दे गानोंकी लाइनें गाया करते हैं और फिर उसी प्रकारके जीवनपर विचार करते हैं फलतः उनमें बुराइयां पैदा होती जाती हैं।

जिस किसी चीजसे आपमें उत्तेजना या गन्दे विचार आनेकी शङ्का है। आप ठीक उसके खिलाफ चित्तवृत्ति बनाइये। तत्काल ही आप उच्च भाव ग्रहण कर लीजिये।

दृष्टिदोष

ऐसे अवसरपर ईश्वरका ध्यान बहुत काम आनेवाला होता है। आदमियत तो यह

है कि जिस प्रकार आप वदवूदार सड़े जानवरकी लाश देखकर दूर दूर भाग जाते हैं और थोड़ी देरमें उसे बिल्कुल भूल जाते हैं उसी प्रकार आपको ऐसी चीजोंकी ओर भी उदासीनता दिखलानी चाहिये। यदि उस वदवूदार चीज-का ध्यान रखने लगेंगे तो निश्चय ही आपमें वदवू आ जायेगी। इसी प्रकार उत्तेजक विचारोंका भी हाल है। यदि आप उन्हें अपने स्थान देंगे तो वासना उत्पन्न होगी और उसकी पूर्ति न होनेपर आपमें पाशविकता उत्पन्न होगी और ज्ञान लोप हो जायेगा। फिर अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये उपाय ढूंढ़ा जायेगा और अपना सत्यानाश कर समाजको भी पतित वनायेंगे। यह आंखका दोष है, चीजका नहीं।

इसीलिये हमें वतलाया गया है कि 'मातृवत् परदारेषु' यानी पर स्त्री माता समान है। वास्तवमें स्त्री तो मातृ-जाति है और प्रत्येक स्त्रीको देखकर उत्तेजित हो जाना मातृजाति—माताका अपमान करना है।

मातृवत् परदारेषु

पशुओंमें भले ही ऐसी वात देखी जाये लेकिन मनुष्यता—इन्सानियत इसे नहीं सह सकती। किसी सुन्दर स्त्रीको देखकर यदि मन चलायमान हो गया तो वह सुन्दरताका दोष नहीं है। यह शिकायत कि

आकर्पक वस्तुओंसे विकार पैदा हो जाता है, निराधार है। सभी तो सृष्टि ईश्वर की है। सुन्दर चीजसे आकर्पण होना स्वाभाविक है लेकिन विकार पदा होना अपनी कमजोरी है—अपनी दृष्टिका दोप है। यह दृष्टिदोप भीपण काण्ड पैदा कर देता है। उसका सबसे पहला चिन्ह यह होता है कि आदमीमें मनोबल नहीं है। खानेकी चीज देखकर कुत्ता अपनी जानकी पर्वाह न कर लपकता है। लेकिन मनुष्य! उसके तो ज्ञान है। वह तो विवेकशील जीव है। कुत्तेको आकर्षण होना क्षम्य है लेकिन मनुष्यमें वह ऐसी कमजोरी है जिसे लोग, इस उदाहरणसे, पशुता कहते हैं।

बुरी चीजकी बुराईको जब हम ग्रहण करेंगे तभी वह हमारे लिये बुरी साबित होगी। वह दोप हमारी दृष्टिका हमारी भावनाओंका होगा। दृष्टि दोप ही सभी चीजोंमें हमें दोष दिखलाता है नहीं तो सुन्दर वस्तु भी मनुष्यमें विकार क्यों पैदा करे। कुछ ऐसे जीवोंमें, जिन्हें ज्ञान नहीं होता, ऐसा गुण देखा गया है जिससे वे बुरी चीजों-में भी जो गुणकारी अंश होगा तुरन्त उसका उपयोग कर लेते हैं। स्वार्थके लिये मनुष्य भी, यदि नालीमें जवाहिरात पड़ा रहे तो, ऐसी गन्दगीसे अपना काम निकाल लेता

है। ज्ञान इसलिये मिला है कि जो गुण हो उसे आप ग्रहण करें और दुर्गुणोंकी ओर उदासीन रहें—यह सोचनेका मौका तक न आये कि क्या गन्दगी है। गुण-मात्र आपके लिये हितकारी है। अपनी दृष्टिको बचा रखें और भावना उच्च रखें।

हो सकता है, कि कुछ लोग कहें कि दृष्टि दोष दूर होता नहीं है और विकार रुकता नहीं है। लेकिन यह सोच लेना कि विकार दूर करना चाहिये उसे दूर करनेकी पहली सीढ़ी है। जैसे ही किसी आकर्षक वस्तुसे आपमें विकार उत्पन्न हो आप तुरन्त अपना ध्यान ईश्वरमें लगा दीजिये। बजाये गन्दे-भद्दे गानोंके किसी भजनकी लाइन आप गुनगुनाइये। कितना आनन्द आयेगा। अपने मनसे गन्दगी दूर करनेके बाद आपमें निर्मलता आयेगी जिसका आनन्द आपको विह्वल कर देगा। आपमें इस मानसिक शक्तिके आ जानेसे वह बुद्धि प्राप्त होगी जो आपका प्रत्येक कार्य आसान बना देगी। फिर आप उसे साधकर दुनियाके मुश्किलसे मुश्किल काम आसान कर सकेंगे, और क्या चाहिये।

संयमका साधन

विन्दु ही जीवन है

[६]

'मरणं विन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्।'

विन्दुमें ही जीवन है और उसका क्षय मृत्यु है। पंजाबी भाषामें एक लोकोक्ति है—'बिन्द विच जिन्द' विन्दुमें ही जीवन है। अंग्रेजी भाषामें भी इसी प्रकारकी बातें पायी जाती हैं। हिन्दू शास्त्रोंमें तो यहां तक कहा गया है कि स्वयं परम पिता परमात्मा विन्दुरूप है, वीर्यकी रक्षा और एतदर्थ नियमोंके पालनको ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य व्रत या धर्मका पालन कहा गया है। जैसा कि पहले कहा गया है ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर देवता और ऋषिगण मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर लेते थे। यह भी कहा गया है कि ईश्वर, वीर्य और जीवमें कोई अन्तर नहीं है।

वीर्यका रूप जैसा बतलाया गया है उससे यह स्पष्ट है कि शरीर इसीके आधारपर है और शरीरमें उसे धारण करनेपर ही साधनाएं, कर्तव्य एवं योगकी पूर्ति हो सकती है। इस वीर्यके सम्बन्धमें आयुर्वेद शास्त्रमें कहा गया है :—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसाऽस्थि ततो मज्जा मज्जायः शुक्रसम्भव॥
धातो रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः।
अहोरात्रात्स्वयं पंचसार्द्धं दण्ड च तिष्ठति॥

वीर्यका रूप

जो लोग यह समझते हैं कि पुष्टिकारक पदार्थ खानेसे ही वीर्यकी उत्पत्ति होगी, इस लिये खाते और वीर्य क्षय करते जाओ, वे निःस्सन्देह ही रोगी होंगे, और अकाल मृत्यु उन्हें सप्रेम गले लगायेगी।

उपर्युक्त श्लोकका सारांश है कि हम जो भोजन करते हैं पहले वह पेटमें जाकर जठराग्निमें पचता है। खाद्य पदार्थके भली भांति पच जानेसे फिर उसका रस बनता है। इसी रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और अन्तमें मज्जासे वीर्य बनता है।

फिर—

रससे लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पांच रात-दिन

और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्थामें रहती है। इसके वाद वीर्य बनता है। इस प्रकार १ मास और ६ घड़ीमें शरीरस्थ रस वीर्य बनता है। सुश्रुतने कहा है कि मानव तनका रस १ मास ६ घड़ीमें वीर्य बनाता है। स्त्रियोंके रजकी भी यही क्रिया है।

आधुनिक विद्वानोंका मत है कि शरीरमें दो अण्ड-कोश हैं। इन्हीं दोनोंसे एक प्रकारका मन उत्पन्न होता है—एक बाह्य और दूसरा आन्तर। इसीसे शरीर संचा-लित होता है।

बाह्य वीर्य अण्डकोशका श्रेष्ठ मल है। इसीमें जीव उत्पन्न करनेकी शक्ति है। इसमें कृमि होते हैं। वीर्यके कृमि दुमदार होते है जो वीर्यमें सदैव चलते रहते हैं। यही गर्भ धारण करते हैं। जिन मनुष्योंमें ये कृमि निर्बल हैं वे सन्तानोत्पत्तिमें असफल पाये जाते हैं।

आन्तरवीर्यसे शरीरमें कान्ति, बल, तेज, तथा परा-क्रम उत्पन्न होता है। शरीरमें वीर्यका कोई खास स्थान या कोष नहीं बल्कि यह समस्त शरीरमें व्याप्त रहता है।

आन्तरवीर्य

इसीलिये तो इसकी रक्षाका नाम ब्रह्म-चर्य है। जिस प्रकार चराचरमें—समस्त सृष्टिमें परमात्मा विद्यमान है उसी प्रकार शरीरमें वीर्य

रहता है। जिस प्रकार परमात्मा अदृश्य रूपसे प्रकृतिका परिचालन करता है उसी प्रकार वीर्य मनुष्यको उसके कर्त्तव्योंकी ओर प्रेरणा, क्षमता, तेज, बुद्धि आदि प्रदान करता है। बहुधा देखा जाता है कि विषयी और कामी वे ही होते हैं जिनका वीर्य पतला और कमजोर होता है। यह वीर्य मनुष्य शरीरमें उसी प्रकार पाया जाता है जैसे तिलमें तेल, दूधमें मक्खन, गन्नेमें मिठास, चन्द-नादिमें सुगन्ध। रक्तमें वीर्य शरीरके कण-कणमें व्याप्त है। शरीरके एक-एक अङ्गमें वीर्य है और शरीर धारण करने तथा उसे समुचित रूपसे परिचालित और मानवो-चित कर्त्तव्योंको पूर्तिके लिये इसका संग्रह और सबल होना आवश्यक है। जितना ही अधिक यह संग्रहीत होगा उतना ही आदमी अपने समस्त कार्योंमें, जीवनके सभी पहलुओंमें सफल होगा। मानव तनकी सफलता इसीके संग्रह और उचित, प्राकृतिक अथवा शास्त्रोक्त व्ययपर है। जिसने इसे खोया उसने अपना सब कुछ खो दिया। विचारनेकी बात है कि यह कितना अमूल्य है और कितनी क्रिया-प्रक्रियाके बाद उत्पन्न होता है। फिर क्षणिक एवं कृत्रिम सुखके लिये इस अमूल्य सम्पत्तिका क्षय कर देना क्या बुद्धिमानी है। आज संसारका भया-

बना रूप वीर्यक्षय और वीर्यहीन पुरुषत्वकी देन है। यदि सांसारिक और पारमार्थिक कल्याणकी कामना है तो इसकी रक्षा करो—यही ब्रह्मनिष्ठा है, यही मनुष्य जीवन है—अन्यथा मानवतनधारी पशुसे भी बुरा जीवन है। पशु भी केवल ऋतुकालपर ही उसका व्यय करते हैं।

मन और वीर्यका घनिष्ट सम्बन्ध है। मानसिक विकासका साधन वीर्य रक्षा है। यदि मानसिक उन्नति करनी है तो बिन्दुका संग्रह करो। इसी प्रकार जीवात्मा-

मन और वीर्य

का भी सम्बन्ध इसी वीर्यसे है और समस्त संसार इसीसे परिचालित है। ओज, तेज, बल, बुद्धि, पराक्रम, सभी कुछ इसपर निर्भर है। अतएव प्रत्येक व्यक्तिका, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, यह परम कर्तव्य है कि वह अपने रज या वीर्यको अमूल्य निधि समझे और उसका संग्रह करता रहे और किसी भी अवस्थामें अपव्यय न होने दे। जीवनका सार यही है। जीवन बिन्दुमें है। उसका अभाव मृत्यु है।

सदाचारमें ब्रह्मचर्यका परम श्रेष्ठ स्थान है। जितने प्रकारके भी तप मानव जीवनमें कहे गये हैं उनमें सबसे बड़ा तप ब्रह्मचर्यका है। ब्रह्मचर्यका अर्थ रज और वीर्यकी रक्षा करना है। रज और वीर्यसे ही मनुष्य जीवनकी

सदाचार और ब्रह्मचर्य

धारणा होती है। एक विन्दु रज और वीर्य वह शक्ति रखता है जिससे सृष्टि का प्रलय और उत्थान हो। दूधमें जिस प्रकार घी रहता हैं रक्तमें उसी प्रकार वीर्य या रज। दूधमेंसे मक्खन निकल जानेसे जिस प्रकार दूध वेकार हो जाता है उसी प्रकार वीर्य या रजके क्षयसे रक्त वेकार हो जाता है। पर स्त्रीको मातृभावसे देखना और विचारको सदैव उन्नत रखना ही मनोविकारसे परे रहना है। यदि पुरुषार्थी और पराक्रमी वनना है और सांसारिक कर्तव्यों की पूर्तिकी क्षमता लाना है तो इस सर्वश्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य का पालन करें।

मानसिक व्यभिचार
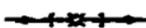
[७]

याद रहे कि ब्रह्मचर्य व्रतके पालनका सर्वप्रधान साधन इन्द्रिय विजय है और यह विजय तभी प्राप्त हो सकती है जब उस प्रदेशके महाचञ्चल राजा—मनपर पूर्णाधिपत्य स्थापित हो। जबतक इन्द्रियोंपर विजय नहीं है—मन अपने वशमें नहीं हैं वीर्यरक्षा कदापि नहीं की जा सकती। जो मानसिक व्यभिचारसे पीड़ित है उसने यदि इन्द्रियोंपर कृत्रिम नियंत्रण रखा तो लाभके विपरीत हानिकी ही आशंका है। और यह हानि निस्सन्देह किसी संक्रामक रोगके रूपमें प्राप्त होगी।

इसलिये सर्वप्रथम मनको वशमें करनेकी आवश्यकता है। विवाहित व्यक्ति भी यदि मनको वशमें नहीं रखते तो मानसिक व्यभिचारसे पीड़ित होंगे और उनपर उन्हीं

मनोनिग्रहकी आवश्यकता

भीषण रोगों के आक्रमणकी आशङ्का रहेगी। मानसिक व्यभिचार ही एक प्रकारका क्षय रोग है जो क्रमशः मनुष्य-को कमजोर और कान्तिहीन तथा वीर्य दोषयुक्त बनाता जायेगा। मानसिक व्यभिचार एक ऐसा भीषण घुन है जो मनुष्यके शरीरको बड़ी ही तीव्र गतिसे खोखला बना देता है, रक्तकी गति मन्द और वीर्य पतला कर देता है,बुद्धि लुप्त-सी होने लगती है। यानी एक प्रकारका नशा-सा वर्तमान रहता है। ऐसा व्यक्ति इतना विषयासक्त हो जाता है कि अप्राकृतिक मैथुनका आश्रय लेता है। एक बात विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। वह यह कि मानसिक व्यभिचारका परिणाम अक्सर मानसिक रोग होता है और पागलपन या उन्माद आदिके होनेकी सम्भा-वना रहती है। मानसिक बीमारीसे यदि कोई व्यक्ति बच भी जाये तो आगे चलकर अधिक आयुमें उसे फिर वही रोग न्यूनाधिक रूपमें प्रकट होगा और इसका प्रभाव उसकी सन्तानपर निश्चित रूपसे पड़ेगा।

४६ एक डाक्टरका कहना है कि मानसिक व्यभिचारके प्रभावसे ही कुछ लोगोंको रक्त दबाव (Blood Pressure) की बीमारी हो जाती है। कभी-कभी कुछ लोगोंमें स्मरण

सम्बन्धी रोग, या ठीक उत्तर न देनेकी कमजोरी आदि भी इसी मानसिक व्यभिचारकी देन है। इसी बातको लेकर एक विद्वानने एक स्थलपर लिखा था कि शारीरिक व्यभिचार उससे कम हानिकर है। फलतः लोगोंने इसका यह भ्रमात्मक निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मचर्य या वीर्य-सञ्चय ही दोषकारक है।

मन वचन कर्म विशुद्धता

यह तो निश्चित है कि मानसिक व्यभिचार अधिक वीर्यपातसे भी भयंकर है। वचनकी दृष्टिसे भी यदि ब्रह्मचर्य व्रतका पालन न किया गया और गन्दे-भद्दे गाने और साहित्य रसका पान किया गया तो अन्तमें उसका असर भी मानसिक व्यभिचारके रूपमें पड़ेगा। इसीलिये कहा गया है कि वास्तविक ब्रह्मचर्य वही है जिसका मन, वचन और कर्मसे पालन किया गया हो। अतएव मन और वचनसे यदि ब्रह्मचर्य व्रतका पालन न किया गया तो ब्रह्मचर्य्याश्रममें १०० वर्ष रहकर भी मनुष्य स्वस्थ और सफल नहीं हो सकता वरन् उसको ब्रह्मचर्याश्रममें रखना ही हितकर न होगा।

मन इन्द्रियोंका राजा है। मन सबसे अधिक चञ्चल है। यदि उसपर वश न रहा तो वह भीषण व्यभिचारमें

लिप्त करके छोड़ेगा। सभी प्रकारके मनोविकारोंका जन्म मनसे ही होता है और यदि उन्हें दूर न किया गया तो फिर उनका पोषण इन्द्रियां करती रहेंगी। फिर ऐसी दशामें मनुष्य कबतक वीर्यकी रक्षा करेगा। मनोविकारों से बचनेके लिये खान-पान, रहन-सहन और वातावरणका भी ध्यान रखना होगा। इन तीनों कारणोंसे कोई एक भी मनोविकार ला सकता है और अन्तमें मानसिक व्यभिचारका शिकार होना पड़ेगा।

मन, वचन और शरीरसे सभी अवस्थाओंमें सदैव, वीर्यरक्षाका नाम ही वास्तविक ब्रह्मचर्य हैं। वास्तविक ब्रह्मचर्य वही होगा जो सचमुच मन, वचनों एवं कर्मोंसे पालन किया गया हो। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि ऐसे नवयुवक जिनसे स्वप्न में भी यह आशा नहीं है कि उन्होंने वीर्यक्षय किया होगा, ऐसी किसी बीमारीसे पीड़ित रहते हैं जो विशेषतः वीर्य-क्षय अथवा वीर्यकी कमजोर अवस्थासे उत्पन्न हो सकती है। वह अज्ञान युवक अपनेको ब्रह्मचारी होनेका ऊपरी दावा भी करता है और लोग विश्वास भी कर ही लेंगे। पश्चिमीय देशोंके एवं पाश्चात्य विचारधारामें बहनेवाले लोगोंका एक ऐसा दल भी तैयार हुआ है जिनका यह

वीर्यरक्षा रोग ?

विश्वास है कि वीर्यके अधिक संग्रहसे क्षय आदि संक्रामक बीमारियां हो सकती हैं। इस दलके कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि ब्रह्मचर्यसे आगे चलकर संक्रामक रोग होनेकी सम्भावना है। लेकिन परिस्थिति भिन्न है। ब्रह्मचर्य अथवा वीर्यरक्षाका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मन और वचनोंसे तो चौबीसों घण्टे व्यभिचारमें लिप्त रहे, और ब्रह्मचारी भी बना रहे। अवश्य ही मानसिक व्यभिचारका परिणाम संक्रामक बीमारियों-के रूपमें मिलेगा।

ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेके लिये मन और वाणीकी शुद्धिके बाद यह भी अनिवार्य है कि शारीरिक अशुद्धि न आये। शारीरिक अशुद्धि बीमारीका घर है और जो रोगी है उसका ब्रह्मचारी होना भी सम्भव नहीं है। डाक्टरों एवं मनोविज्ञानवेत्ताओं-का तो कहना है कि रोगी और निर्बल ही अधिक विषयी होते हैं और फलतः क्षीण होते चले जाते हैं।

वीर्य रक्षा और स्नान

शरीरमें इतने छिद्र और रोमकूप इसीलिये बने हैं कि शरीरकी भीतरी गन्दगी दूर होती रहे और साथ ही शुद्ध वायुका प्रवेश भी जारी रहे। नाक मुंहके अतिरिक्त रोम-

कूपादि भी सांस लिया करते हैं और स्वस्थ रहनेके लिये यह आवश्यक हैं कि उन्हें सदैव साफ रखा जाये और यह ध्यान और कोशिश बनी रहे कि वे बन्द न होने पाय।

स्नान मात्र ही पर्याप्त शुद्धि नहीं दे सकता। केवल १०-२० लोटा पानी डाल लेने या नदी या तालावमें १-२ डुबकी लगा लेना ही पर्याप्त स्नान नहीं। साथ ही गरम पानी और साबुनसे शरीरको मलमलकर धोना भी पर्याप्त या आवश्यक स्नान कदापि नहीं है। स्वस्थ रहने, वीर्यकी रक्षा करने तथा रोग विमुक्त रहनेके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति शरीरको स्वच्छ करनेमें कदापि आलस्य न करे और विधिवत् स्नानको सुख, सौन्दर्य और स्वास्थ्यका सर्वोच्च साधन माने।

इसके लिये यह आवश्यक है कि घर्षण स्नान किया जाये। इस विधिसे स्नान करनेसे मनुष्य तेजस्वी, निर्विकारी, नीरोग, ब्रह्मचारी तथा दीर्घजीवी बन सकता है। जो अपने शरीरको गन्दा बनाये रहते हैं वे अल्पायुको प्राप्त होते हैं और अल्पायुमें भी सदैव रोग एवं मनोविकारके शिकार बने रहते हैं। शरीरको किसी खुरदरे गमछे या तौलियेसे रगड़ना ही रोमकूपोंको साफ रखनेका मुख्य साधन है। रोमकूप साफ रहेंगे तो शरीरकी

गन्दगी और विष आसानीसे बाहर निकल आयेगा। डाक्टरोंका कथन है कि बहुधा मन्दाग्नि, कब्जियत आदि रोग इसीसे होते हैं।

सुबह और शाम दो बार स्नान करना चाहिये। यदि शीत अधिक पड़ता हो तो १०-१५ मिनट अन्यथा आध घण्टेका समय स्नानमें व्यतीत करना चाहिये। भलीभांति विधिवत् स्नान ही अपने गुण दिखा सकता है। स्नानका स्थान एकान्त होना चाहिये। पाश्चात्य विद्वानोंने नंगे स्नान करनेकी राय दी है लेकिन यह भारतीय सभ्यताके विरुद्ध है। तथापि शरीरमें जितने कम कपड़े हों उतना ही अच्छा। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि भोजन करने के बाद स्नान करनेका अवसर न आये। इस प्रकार स्वास्थ्यको सुधारनेसे ही ब्रह्मचर्य व्रतका पालन हो सकता है।

ओज और वीर्य

[८]

मानव तन जिस मूल शक्तिके कारण सजीव रहता है उसे ओज कहा गया है। यह ओज शरीरकी सम्पूर्ण धातुओंका सार और मानवी जीवन शक्तिका आधार है। इसके बढ़नेसे आयुर्बलकी वृद्धि और घटनेसे क्षीणता आती है।

ओज रससे लेकर वीर्यपर्यन्त धातुओंका तेज है, जिसके नष्ट होने पर कोई भी जीवित नहीं रह सकता। जीवन धारण तभी किया जा सकता है जब यह शरीरमें उपस्थित रहता है।

ओज प्रधानतया हृदयमें रहता हैं और वहींसे सब अंगोंमें पहुंचकर उनकी रक्षा करता है। वीर्यकी उपधातु-

ओज और धातु

को भी ओज कहा गया है, लेकिन इस सम्बन्धमें मतभेद है और इसे सात

धातुओंसे पृथक् माना गया है। मेरा अपना मत तो ऐसा हैं कि यह शेष सभी धातुओंसे स्वतन्त्र एवं सर्वश्रेष्ठ तत्व है। इसको विशेषज्ञ विद्वानोंने वीर्यकी शक्तिका रूप भी दिया है।

तथापि, ओज समस्त शरीरमें निवास करता है। वैद्यक शास्त्रमें इसे चिकना, शीतल, स्थिर तथा उज्वल माना गया है। समस्त शरीरमें तेज और कान्ति यही फैलाता है और वीर्यपुष्टिका कारण भी यही है।

ओजका परिमाण वीर्य पर निर्भर करता है। यदि वीर्यकी अधिकता रही तो वह भी अधिक है अन्यथा वीर्य की न्यूनताके कारण यह भी अल्प मात्रामें रहेगा। समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियां इसी तत्वके आधीन मर्यादित रहती हैं। वीर्यसंचय ही इसका श्रोत है।

जैसे सोनेको सहस्र वार तपाने पर उसमें मल नहीं रह जाता, उसी प्रकार रसके कई वार पकते रहने पर जब वीर्य बन जाता है, तब उसमें फिर मल नहीं रहता। अर्थात् वीर्यके पश्चात् फिर कोई क्रिया शेष नहीं रहती।

वीर्य ही हृदयको पुष्ट और कर्तव्यशील बनाता है। वीर्यसे ही सर्वाङ्गमें जीवनी शक्ति संचालित होती रहती

वीर्यरक्षा क्यों ?

है। वीर्यसे ही मस्तिष्क शान्त और विचारशक्ति सम्पन्न रहती है। वीर्यसे ही दृष्टि तथा श्रवण शक्ति स्थिर रहती है। वीर्यसे ही निर्भयता, स्वतन्त्रता, उत्साह, साहस तथा पराक्रम और गुण बढ़ते हैं। वीर्यसे ही आलस्य, रोग, निर्बलता, कलुपता, दम्भ, अज्ञान तथा अविनय और दुर्गुण दूर किये जा सकते हैं। वीर्यके बिना सभी कार्य असिद्ध हो जाते हैं। वीर्य ही सन्तानोत्पत्तिका मूल है। वीर्य मनुष्यकी सुन्दरता, सभ्यता, पवित्रता, धैर्य, पुण्य तथा सद्व्यवहारका कारण है।

वीर्यरक्षासे ही हृदय पुष्ट तथा कार्यकारी बन सकता है। प्राणायामसे वीर्यरक्षा हो सकती है और हृदय स्वस्थ रह सकता है। व्यायामसे हृदयकी शक्ति बढ़ती रहती है। उत्तम आहारसे वीर्य बनता है और हृदय बलवान होता है। नीरोग रहनेसे हृदय कभी क्षीण नहीं होता।

ब्रह्मचर्यके बल पर असाध्यसे असाध्य कर्म अविलम्ब किये जा सकते हैं। इसीलिये कार्यकी सिद्धि तक लोग

वीर्यशक्ति

ब्रह्मचर्यसे रहते हैं। ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे उन्नति, शान्ति और आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह बात हमें ऋषियोंके उपदेशसे

ज्ञात होती है। जो पुरुष देश, धर्म और जातिकी सेवा तथा रक्षा करना चाहे वह ब्रह्मचर्यसे रहनेका प्रयत्न करे। अन्तःकरणके पवित्र और शान्त रखनेके लिये ब्रह्मचर्य ही परम औषधि है। सदैव प्रसन्न और सुखी रहनेका उपाय अक्षुण्ण ब्रह्मचर्य है। जीवनकी सफलता, सुन्दर स्वास्थ्य, हृष्टपुष्ट अङ्ग, कार्यकारिता और उद्यमशीलताके लिये ब्रह्मचर्य अमृत रूप है। सदुद्देश, सदाचार, स्वात्म-शासन स्वाधीन विचार और विश्वप्रेम ये सब गुण ब्रह्मचर्यके वशीभूत हैं। सुसन्तान, स्त्री-सुख, कुटुम्बकी अनुकूलता तथा सम्बन्धियोंका सद्व्यवहार, सबकी प्राप्ति ब्रह्मचर्यसे होती है। ब्रह्मचर्यसे ही अमृतका लाभ कर वासना रूपी कुरोगोंका नाश किया जा सकता है। ब्रह्मचर्यसे ही दिव्य ज्ञान और सच्चे अनुभव मिलते हैं, जिनसे मनुष्य दुर्भावना तथा दुष्कर्मोंसे मुक्ति पा जाता है।

वीर्य रक्षाके नियम

[६]

ब्राह्ममुहूर्त्तमें जागरण (१)

रातके चौथे प्रहरका नाम ब्राह्म मुहूर्त्त है। चार-साढ़े चार बजे निद्रात्याग सभी प्रकारसे लाभकर है, क्योंकि इस समय त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु चलती है। प्रकृति सरस और सुन्दर रहती है तथा सर्वत्र स्फूर्ति और प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती रहती है। सूर्योदयसे पहले उठ जाना स्वास्थ्य रक्षाका सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपयोगी नियम है। जो लोग इस समय सोते रहते हैं वे प्रायः आलसी, अल्पायु एवं अशक्त रहते हैं।

उषःपान (२)

आयुर्वेद शास्त्र विशारदोंने उषःपानके बहुत लाभ बतलाये हैं। इस समयका जल पीना बड़ा लाभदायक होता है। इस समय जल पीनेसे वीर्य सम्बन्धी रोग दूर होते

हैं, काम-विकार शान्त होता है, मेधा और शक्तिकी वृद्धि होती है तथा कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, स्वप्नदोष आदि रोग दूर होते हैं। उषःपानका समय सूर्योदयसे पहले (ब्राह्म मुहूर्त्त) माना गया है।

मल-मूत्रत्याग (३)

सूर्योदयसे पहले उषः पान कर मलत्याग करना चाहिये। आलस्यवश जो लोग इस आवश्यकताको रोकते हैं वे अपने स्वास्थ्यको खो बैठते हैं। उनके मलाशय और मूत्राशयमें रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मलके बिगड़नेसे ही प्रायः अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है। नियमित रूपेण शौच कर्म करनेसे समस्त दिन स्फूर्ति, प्रसन्नता, क्रिया-शीलता, चित्त शुद्धि, सुबुद्धि आदिकी वृद्धि होती है तथा प्रमाद, अग्निमान्द्य, पीड़ा तथा ज्वर आदि नहीं सताते।

वायु सेवन (४)

प्रातःकाल शुद्ध वायुसेवन स्वस्थ रहनेके लिये परमावश्यक है। प्रातःकालकी त्रिविध वायु स्वास्थ्यके लिये परमोपयोगी है। प्रातःकाल वायुसेवन करनेसे देहकी धातु और उपधातु शुद्ध और पुष्ट होती है। मनोद्वेग, आलस्य, दुर्बलता आदिका नाश होता है। बुद्धि और बलकी वृद्धि होती है तथा नेत्र और श्रवणकी शक्ति बढ़ती है।

नित्यस्नान (५)

सदैव स्नान करनेवाले मनुष्यको रूप, तेज, बल, पवित्रता, आयुष्य, आरोग्य, अलोलुपता, मेधा आदि गुण प्राप्त होते हैं तथा बुरे स्वप्न नहीं दिखलायी पड़ते। वीर्य रक्षाके लिये अन्तःशुद्धिके साथ-साथ बाह्यशुद्धि भी आवश्यक है।

प्रातःकालका स्नान बहुत ही उपयोगी होता है। सायंकालको भी स्नान किया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु-में दो बार स्नान करना आवश्यक है। प्रत्येक स्त्री पुरुष-को सदैव कमसे कम एक बार तो अवश्य ही स्नान कर लेना चाहिये। स्नानके समय सारे शरीरको भली भांति मल-मलकर धोना चाहिये। स्नानके लिये स्वच्छ और ताजा जल बहुत ही उपयोगी माना गया है। शरद् ऋतुमें अधिक शीत पड़नेपर गरम जलसे भी स्नान करना हानि-कारक नहीं है। पर सिरको पहले-पहल ठण्ढे जलसे ही धो लेना चाहिये। कूप जल सभी ऋतुओंमें नहानेमें लाभदायक होता है। थोड़े जलसे नहानेमें शरीरके छोटे-छोटे छिद्रोंका मल दूर नहीं होता, और भीतरका दोष बाहर नहीं निकलने पाता। इसलिये यदि नदी पास हो तो उसीके जलमें नियमित रूपसे स्नान करना चाहिये।

नत्य स्नानसे वीर्य तथा शरीरके अन्य धातुओंको शान्ति मिलती है।

सात्विक भोजन (६)

जोवधारियोंके लिये आहार बहुत आवश्यक पदार्थ होता है, पर अधिक होनेसे यह हानि पहुंचाता है। स्वल्पाहार करनेवाले सदा सुखी रहते हैं। विशेष आहार करनेवालोंको प्रायः स्वप्नदोषसे पीड़ित पाया गया है। कुछ लोगोंकी धारणा-सी हो गयो है कि जितना खाया जाय उतना ही अच्छा है। बड़े-बड़े वैद्योंका कहना है कि थोड़ा ही आहार करना स्वास्थ्यके लिये उपयोगी होता है। प्रत्येक ग्रासको दांतोंसे खूब मसल कर खाना चाहिये। आहार उतना ही करना चाहिये जितना कि सुगमतासे पच सके। विशेष आहारसे अजीर्ण, ज्वर, संग्रहणी, कोष्ठबद्धता और धातु-दौर्बल्य आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भोजन कर लेनेपर पानी और हवाके लिये पेटमें काफी स्थान छोड़ देना चाहिये। तभी शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता हैं, मनमें बल और स्फूर्तिका वास रहता हैं। आलस्य निद्रा, अनुत्साहका नाश होता है। इससे वीर्य रक्षामें भी बहुत सहायता मिलती है।

जो आहार, आयुष्य, ओज, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाला हो और जो सरस, चिकना, गुरु तथा रुचिवर्द्धक हो वह सात्विक लोगोंको प्रिय होता है।

ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंको आहारपर बहुत ध्यान देना चाहिये। तामस आहारसे कभी वीर्य रक्षा नहीं हो सकती। सात्विक आहार करते रहनेसे मानसिक वृत्ति भी सात्विक बन जाती है।

सात्विक आहारसे शरीरके सब धातुओंको लाभ पहुंचता है, बुद्धि और शक्ति बढ़ती है, काम, क्रोध, मद, लोभ, और मोहका नाश होता है तथा स्वास्थ्य और जीवनी शक्तिकी वृद्धि होती हैं।

वैद्यक शास्त्रमें फलाहारके अपरिमित लाभोंका वर्णन है। इस बातको प्रायः सभी लोग जानते होंगे कि हमारे

फलाहार

ऋषि मुनि फलाहारी होते थे। बहुतसे लोग ऐसे भी हुए हैं कि जिन्होंने फल या मूलके अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाया है। दुर्वासा ऋषि दूब ही खाकर बहुत दिनों तक जीवित रहे।

फलोंमें प्राकृतिकता विशेष है। बहुतसे वैद्य लोग बड़े-बड़े रोगियोंको फल खानेकी सलाह देते हैं। एकादशी जैसे कई उपवास व्रतोंमें भी लोग फल खाकर रह जाते

हैं। भोजन कर लेनेके पश्चात् फल खाना बहुत आवश्यक है। जो लोग काम विकारोंसे विशेष पीड़ित हों, वे कुछ दिनों तक फल खाकर ही रहें। जो फल जिस ऋतुमें होता है, वह उस ऋतुमें अधिक लाभकारी होता है। वीर्य रक्षाके लिये भी फलोंका खाना बहुत लाभदायक है। फलाहारसे स्वास्थ्य, दीर्घायु, बल और बुद्धि बढ़ती है। कोष्ठबद्धता, निर्बलता, मल विकार, ज्वर तथा अन्य रोगोंसे रक्षा होती है। मन शान्त होकर सत्कर्मोंमें लगता है, वीर्य पुष्ट होता है, काम शक्तिकी प्रेरणा दब जाती है और इन्द्रियोंपर विजय मिलती है।

दूधका सेवन

इस संसारमें यदि कोई पदार्थ अमृत कहलाने योग्य है तो वह दूध ही है। प्रायः सभी वैद्यक ग्रन्थोंके रचयिताओंने इसकी प्रशंसा की है। पाश्चात्य देशके कई डाक्टर लोग केवल दूधसे ही कई रोगोंको दूर करते हैं। वास्तवमें दूधसे बढ़कर कोई खाने पीने योग्य पदार्थ है ही नहीं। यही कारण है कि इस देशके ऋषि-महर्षि तक अपने पास गौ रखते थे। यह बड़ा ही सात्विक आहार है। केवल दूध पीकर भी कई दिनों तक रहा जा सकता है। जो लोग यह ख्याल करते हों कि दूध पीनेसे वीर्य रक्षा नहीं हो सकती वे

भूल करते हैं। थोड़ा-सा धारोष्ण दूध पीना बड़ा ही हितकर होता है। इस दूधसे काम-विकार उत्पन्न नहीं होता। ताजा निकला हुआ दूध बहुत गुणकारी होता है।

तुरंतके दुहे हुए दूधका नाम ही पीयूष है। इस विषय में गौका दूध ही मान्य है। भैंस आदिके दूधमें यह बात नहीं है। भैंसका दूध तमोगुण बढ़ाता है। यह विषयकी उत्तेजना भी प्रकट करता है।

गौका धारोष्ण दूध थोड़ा-सा प्रातःकाल पीनेसे मनको शान्ति मिलती है। पवित्र बुद्धि, सत्साहस, पढ़ने-पढ़ानेमें उत्साह, धार्मिक विचार तथा आनन्द उत्पन्न होता है एवं कई प्रकारके धातु सम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं। क्षीणता, ह्रास तथा अन्य दोषोंको नष्ट कर हृदय, मस्तिष्क तथा सर्वाङ्ग पुष्ट तथा तेजस्वी बनाता है और व्यर्थकी उत्तेजनाको शान्त करता है।

सत्संग (७)

सत्संगसे बुद्धि विमल होती है। वाणीमें सत्यका संचार होता है, पाप कोसों दूर भागता है, चित्तमें प्रसन्नता आती है तथा मनुष्य यशस्वी बनता है। आत्मोन्नति और आत्मसुधार सज्जनों, साधुपुरुषों तथा विद्वानों के सत्संगसे प्राप्त होता है।

सत्संग भी दो प्रकारका होता है। घर बैठे सन्तों, महात्माओं और विद्वानों तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके विचार सद्-ग्रन्थों द्वारा मिलते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक घरमें प्रकाश और वायुका रहना आवश्यक है उसी प्रकार सद्ग्रन्थ भी। अमूल्यसे अमूल्य ज्ञान सत्संग द्वारा प्राप्त होते हैं। सत्संग करने और सद्ग्रन्थोंके पढ़नेसे मनुष्य पापात्मासे पुण्यात्मा, व्यभिचारीसे सदाचारी तथा नीचतासे उच्चता को प्राप्त हो सकता है।

कार्यशीलता (८)

सदैव किसी न किसी काममें लगे रहना चाहिये। दिन रात परिश्रम करनेसे विषय-वासना नहीं सताती। बेकार लोग ही विलासितासे आनन्द पाते हैं। जो लोग अपने वीर्यकी रक्षा करना चाहते हों उन्हें कभी बेकार नहीं रहना चाहिये क्योंकि आलस्य सभी प्रकारके विकारोंका श्रोत है। परिश्रमरत रहनेसे कुविचार उत्पन्न नहीं होते और भोग विलासमें मन नहीं भटकता।

समयका सदुपयोग (९)

समयका सदुपयोग ही सुख सम्पत्तिका महान साधन है। प्रतिदिन आयु घटती है इसीलिये संसारमें जो कुछ करना है वह कर लो। मृत्युका कोई समय निश्चित नहीं।

परिस्थितियोंका कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं। फिर हमारे पास इतना समय कहां कि हम बेकार रहें। यदि वास्तवमें देखा जाये तो एक क्षणका एक अंश भी यदि व्यर्थ गया तो हमारी हानि हुई यह निश्चित है। चाहे व्यवसाय ले लीजिये चाहे कोई व्यक्तिगत कार्य। हो सकता है किसी एक क्षणमें आपके मस्तिष्कमें ऐसा विचार पैदा हो जाये जिससे आप व्यवसायमें लाखों रुपये पैदा कर लें अथवा साधारण अवस्थामें महान पुरुष बन जायें या कोई बुरा कर्म करनेसे बच जायें। मन तो कभी बेकार नहीं बैठता फिर किस समय आप क्या खो बैठें उसका क्या ठिकाना। इसलिये यह आवश्यक है कि समयको हम सभी मूल्यवान वस्तुओंसे अधिक मूल्यवान समझें और उसका सदुपयोग ही करें। यदि देखा जाय तो समयका सदुपयोग कर ही लोग महान बनते हैं, उनका लक्ष्य चाहे विद्या, लक्ष्मी, यश अथवा कोई आधिभौतिक या आध्यात्मिक उन्नति रही हो।

६७ समय बड़ा निर्मम होता है, वह किसीपर दया नहीं दिखलाता। आप हजार उसे वापस बुलायें वह कभी नहीं आयेगा। अतः मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह अपने समयके छोटेसे छोटे अंशका भी सदुपयोग करे और व्यर्थ

न जाने दे। मनुष्य जीवन पाकर यदि हम उसके सभी कर्तव्योंको पूरा न कर सके तो इस जीवन और हरे-भरे संसारसे लाभ ही क्या रहा।

नियमवद्धता (१०)

दैनिक जीवनके सभी कर्म नियमवद्ध रहने चाहिये। जीवनको सुखी और शान्त, साथ ही प्रत्येक कार्य्यमें सफल होनेके लिये नियमितता परमावश्यक है। स्वस्थ, उद्योगी, साहसी, बुद्धिमान तथा दृढ़प्रतिज्ञ, नियमवद्धतासे ही वन सकते हैं। सभी प्रकारकी उन्नति, इच्छित कार्यों की पूर्ति, विद्या और धनका संग्रह, कर्तव्यपरायणता आदि नियमित जीवनके चिन्हस्वरूप हैं।

अनियमित व्यक्ति किसी भी कार्यमें सफल नहीं हो सकता। किसी भी कार्यके लिये वह दृढ़संकल्प नहीं हो सकता इसलिये प्रत्येक कार्य और समयका छोटेसे छोटा अंश नियमित होना चाहिये।

इच्छा शक्ति और संकल्प (११)

मनुष्यमें इच्छा शक्ति एक महान दैविक विभूति है। यह शक्ति जिस लक्ष्यकी ओर प्रेरित की जाये उसे सफल बनाकर छोड़ेगी। अपनी इच्छाको किसी सत्कार्यके

सम्पादनमें दृढ़ संकल्प लेकर लगा देना चाहिये। इच्छा शक्तिके प्रयोग और दृढ़ संकल्पसे मन पर अधिकार और दृढ़ता प्राप्त होती है। बाधाओंसे लड़नेकी शक्ति आती है, कर्तव्यसे विमुख नहीं होने देती, प्रसन्नता और धीरता देती है तथा स्वाधीन विचार उत्पन्न होते हैं। मनुष्यका क्रमिक और नियमित विकास इसी प्रकार हो सकता है। इसका अभ्यास सदैव करना चाहिये।

अभ्याससे सभी साधना सफल होगी, सद्गुणोंकी वृद्धि होगी। स्वावलम्बन आयेगा और मन विकार रहित बनेगा। नियमित चर्या, समयका सदुपयोग, इच्छा शक्ति, संकल्प और सदभ्यास सफलताकी कुञ्जी है।

सूर्यताप सेवन (१२)

वैज्ञानिक युगके साथ-साथ सूर्यप्रकाश एवं स्वास्थ्यके सम्बन्धको अधिकाधिक समझा जाने लगा है और किन्हीं रोगोंसे विमुक्त करनेके लिये सूर्यरश्मियोंका प्रयोग होने लगा है। विद्वानोंका विश्वास है कि सूर्यकिरणमें पायी जानेवाली अल्ट्रावायलेट किरणें ही मनुष्यके लिये विशेष-रूपसे उपयोगी हैं।

१०-१५ मिनट रोज नंगे बदन धूप ली जानी चाहिये। खुले बदन धूपमें लेटना चाहिये। धूप लेनेके बाद यदि

स्नान न करना हो तो गीले और खुरदरे कपड़ेसे शरीर-को पोछना चाहिये। विटामिन डी का काम केवल धूपसे ही चल सकता है। गरीबों और ग्रामीणोंके लिये तो धूप ही दूध-घी है।

सामयिक विश्राम (१३)

दिन-भरकी शारीरिक एवं मानसिक थकावटको दूर करनेके लिये रात्रिमें सामयिक और नियमित व्यायाम आवश्यक है। ठीक समयपर सोनेसे धातु उचित अवस्था में रहती है और प्रातः उठते ही शरीरमें स्फूर्ति-सी भर जाती है, पुष्टि, कान्ति, बल, उत्साह और अग्निकी वृद्धि होती है। ठीक समय पर न सोने या कम सोनेसे अजीर्ण, उदासीनता, आलस्य, स्वप्नदोष, वायुविकार, उन्माद आदि रोग हो जाते हैं। वीर्यरक्षा और सुन्दर स्वास्थ्यके लिये यह आवश्यक है कि नियमानुसार निद्रा ली जाये और ६ से ८ घण्टे तक सोना चाहिये। उचित निद्राका अभाव शरीरके सभी भागों पर पूर्ण रूपसे पड़ता है तथा मानसिक विश्राम एवं शान्ति मिलती है। आयुर्बल बढ़ता है तथा नेत्र और हृदयको विश्राम व शक्ति मिलती है।

दैनिक व्यायाम (१४)

वायु, जल, अन्न आदिकी भांति मनुष्यके लिये

व्यायाम भी आवश्यक है। स्वस्थ रहनेके लिये यह अनिवार्य है कि व्यायाम किया जाये। इस बातमें दो मत नहीं हैं कि व्यायाम किये बिना कोई भी मनुष्य नीरोग और स्वस्थ नहीं रह सकता।

सुश्रुतने बतलाया है कि व्यायाम करनेसे शरीरकी कान्ति बढ़ती है, सब अंगोंका सुन्दर गठन होता है तथा अग्निदीपता, स्थिरता, स्फूर्ति, आरोग्यता, सहनशक्ति तथा बलकी प्राप्ति होती है।

जिनका वीर्य कमजोर हो उन्हें भी पहले हल्के व्यायाम या आसन करना चाहिये फिर शक्ति आ जानेपर कड़े व्यायाम करना चाहिये। पुष्टसे पुष्ट भोजन करनेवालेके लिये भी व्यायाम उतना ही आवश्यक है। प्रातःकाल खुले मैदानमें टहलना सर्वोत्तम व्यायाम है।

प्रातःकाल या शामको अथवा दोनों वार व्यायाम किया जा सकता है। व्यायाम करनेके पहले भोजन नहीं करना चाहिये और करनेके बाद ही कोई भी चीज खाना या पीना न चाहिये। यदि कुछ पेय पदार्थ, दूध या फलों का रस, लेना हो तो थोड़ा ठहर कर लेना चाहिये। व्यायामके बाद ही स्नान भी न करना चाहिये। जो व्यायाम नहीं करता वह न तो भोजन पचा सकता है और न

वीर्यकी रक्षा ही करनेमें सफल होगा। क्योंकि व्यायाम-से इन्द्रिय-दमनकी शक्ति प्राप्त होती है। अच्छे शरीरमें अच्छा मन भी होता है।

सादगी (१५)

आजकल नवयुवकों एवं नवयुवतियोंमें शृङ्गारका प्रकोप बहुत भीषण हो गया है। सभी सुन्दर बननेकी चेष्टा करते हैं। आकर्षक बननेकी प्रबल चेष्टा उनकी रहती हैं और यही कारण है कि समाजमें कभी-कभी हलचल-सी मच जाती है। आकर्षक बननेकी भावना दूषित मनोवृत्ति उत्पन्न करती है। आडम्बर व्यभिचारकी ओर ले जाता है।

यदि ब्रह्मचर्यका पालन किया जाये और शरीरमें उत्तम वीर्य संचित हो तो फिर आकर्षक बननेकी आव-श्यकता नहीं पड़ेगी। जो कान्ति वीर्यके संयमसे प्राप्त होगी वह अतुलनीय है। अंग-प्रत्यंग सजाना, विविध प्रकार और रंगके वस्त्र धारण करना, केश-विन्यास तथा अन्य प्रकारके शृङ्गार अवांछनीय हैं। चरित्र-निर्मलता ऐसा शृंगार है जो विश्वप्रिय बना सकता है और जो प्रेम गुणके लिये उत्पन्न होगा वही चिरस्थायी और सच्चा होगा। सुन्दरता प्रकृतिकी देन हैं। अपने हाथ सुन्दर नहीं

बन सकते, आकर्षण नहीं पैदा कर सकते, हां विकार और अपव्यय अवश्य ही हाथ लगेगा। सादी रहन-सहन और उच्च भावनाका आदर्श आज पाश्चात्य देशोंमें भी फैल रहा है और मान्य हो गया है। (Plain living and high thinking) सादी रहन सहन और उच्च भावनाओंका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें भी जोरदार हो रहा है।

उपवास (१६)

सभी प्रकारके विकार, वे चाहे शारीरिक हों अथवा मानसिक, उपवाससे दूर किये जा सकते हैं। विशेषतया मनोविकारोंको दबानेमें उपवासका जो महत्व है वह अतुलनीय है। इन्द्रियोंपर अधिकार करना है तो जबान और पेट पर विजय प्राप्त कर लो। उपवाससे जो चित्त-शुद्धि, पेटके विकारका नाश तथा शान्ति मिलती है वह किसी औषधोपचारसे सम्भव नहीं। पेटके विकारों को दूर करनेके लिये तथा आहार रस और रक्त बनानेके लिये यदाकदा उपवास करना चाहिये। चर्म रोग दूर करनेके लिये भी उपवास महत्वपूर्ण है।

मानसिक शुद्धिके लिये तो उपवास आवश्यक है। कैसा भी विकार मनमें उत्पन्न हो उपवास करनेसे दब जायेगा इसमें सन्देहकी गुंजायश नहीं। उपवास करते

ही मनमें गम्भीरता आयेगी। जब पेटको भोजनको पचानेका कार्य नहीं करना रहता तो वह अङ्गोंके अन्य विकारोंको दूर करनेमें लग जाता है। भूख न रहते हुए भी खाना भयंकर है। अन्तड़ियां कभी इतना भार सहन नहीं करेंगी और इसका परिणाम शारीरिक तथा मानसिक विकार होगा। अतएव उपवास सर्वप्रकारसे लाभकर है। पेटमें शिकायत आयी और मनमें चंचलता तथा वीर्यमें कमजोरी आयेगी। इन दोनोंके लिये उपवास सर्वोत्तम है। वीर्य रक्षाके लिये तो यदा-कदा उपवास अनिवार्य है।

व्यसन त्याग (१७)

विभिन्न दुर्व्यसनोंसे बचकर रहनेमें ही कुशलता है। बीड़ी, सिगरेट, गांजा, भांग, चरस, शराब, पान आदिके व्यसनसे सदैव दूर रहना चाहिये। इन व्यसनोंमेंसे किसी एकके आजानेसे भी स्वास्थ्यको भारी खतरा रहता है। धूम्रपानसे स्नायुकी बीमारी हो जाती और ब्रह्मचर्याश्रम या छात्रावस्थामें इनका बहिष्कार तो अनिवार्य है। आज भी नवयुवकोंमें जिस प्रकार उद्देश्य भ्रष्टता पायी जाती है उसका कारण यही है कि उनमें दुर्व्यसनोंने घर बना रखा है और मनोविकार एवं रोगोंसे उनका पीछा छुटता

ही नहीं। फिर इस प्रकारके व्यसनकी कोई आवश्यकता लोगोंमें नहीं होती।

उच्च भाव (१८)

सर्वदा और सभी अवस्थाओंमें विमल और उच्च भाव ही रखना चाहिये। कोई भी उत्तेजक अवसर आये मनको साम्यावस्थामें तभी रखा जा सकता है जब भाव उच्च हों। स्त्रियोंके संसर्गमें आनेपर यह ध्यान रहना चाहिये कि आपकी माता, बहन, बेटी सभी स्त्री जाति-की हैं और उन्हें मातृवत् देखना परम धर्म है। अपनी धर्मपत्नीके प्रति भी विमल भावना ही रखनी चाहिये। हमेशा हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि यह मानव-तन धारण करनेसे इस संसारमें और भी अनेक कार्य हैं जिनकी पूर्ति ही जीवनका सुख और सच्चा पुरुषार्थ है केवल अच्छा खाना और पहनना नहीं। वह जानवरों के लिये भी सम्भव है। परोपकार, सेवाभाव, गरीब अनाथ अबलाओं, देश जातिकी रक्षा और सेवा अपने जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। यदि संसारमें एक भी व्यक्ति महापुरुष हो सका है तो आप भी होंगे, यदि राजनीतिज्ञ या देशभक्त हुए हैं तो आप भी हो सकते हैं। सभी कुछ पुरुषार्थीके लिये सम्भव हैं यह भावना लेकर

जीवनको उचित ..गपर ‌ जाना ही उच्च और निर्मल भाव हैं। सांसारिक क्षणिक सुखोंसे जीवनकी सफलता प्राप्य नहीं है।

[१९] ईश्वर चिन्तन

विकारोंको दबाने और वीर्यरक्षाके लिये ईश्वर चिन्तन ही एकमात्र साधन है। पहले भी बताया जा चुका है कि दृष्टि दोष और उत्तेजना रोकनेके लिये उच्च भाव और विमलता लानी होगी, जो कि तत्काल ईश्वर चिन्तनसे मिल सकता है। किसी अवसर या दृश्यसे जब विकार आये तो तुरन्त ईश्वरका नाम जप या चिन्तन लाभकर है। नास्तिक भी हो तो ऐसे अवसरपर ईश्वर चिन्तनके सिवा और कोई चारा नहीं है। अतएव नियमित रूपसे, सदैव तथा प्रत्येक अवसरपर परमपिता परमात्माका ध्यान आवश्यक है। उसके ध्यानसे विमलता मिलेगी और चिन्तनसे मानसिक विकार दूर हो शक्ति, विश्वास, संकल्प आदि मिलेगा।